मृत्यु : सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम् ।
कीर्ति : श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा ॥



हे, अर्जुन ! मैं सबका नाश करने वाला मृत्यु और आगे होने वालों की उत्पत्ति का कारण हूं तथा स्त्रियों में (उनके ७ गुणों के अनुसार) कीर्ति, श्री, वाक्, स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा हूं।

श्रीकृष्ण-कथा पर आधारित उपन्यास १

रामकुमार-भ्रमर

कालचक्र



सरस्वती विहार

कालचक्र
(उपन्यास)

प्रथम संस्करण : १९८६

प्रकाशक :
सरस्वती विहार
जी० टी० रोड, शाहदरा
दिल्ली-११००३२

मुद्रक :
गौतम आर्ट प्रेस
नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२

मूल्य : पैंतीस रुपये

KAALCHAKRA
(Novel)
RAMKUMAR BHRAMAR

First Edition : 1986

Price : 35.00

'कालचक्र' से 'कारावास' तक

श्रीकृष्ण-कथा के स्मरण-मात्र से साधारण व्यक्ति के मन में जो गिने-चुने चित्र उभरते हैं, उनमें गीता का उपदेश, सारथी कृष्ण, गोपियां और कृष्ण या कंस-वध है। इन सभी चित्रों और घटनाओं का जुड़ाव श्रीकृष्ण के जीवन में कितना और किस सीमा तक महत्त्वपूर्ण है, इस निर्णय-अनिर्णय में फंसे बिना यदि यह कहा जाये कि उनके जीवन की असंख्य घटनाओं में से, यही कुछ घटनाएं अति प्रचलित और प्रचारित हैं, तो गलत नहीं होगा।

पर औसत पाठक या श्रोता श्रीकृष्ण के उस वैविध्य से परिचित नहीं हैं, जो गीता-ज्ञान देने से पूर्व उन्होंने स्वयं गीता के शब्दसार की ही तरह साकार झेला। वह समूचा रूप और काल-खण्ड अनायास ही सही, श्रीकृष्ण को सामान्य से असामान्य और मानव जीवन से 'ईश्वरत्व' की ओर ले गया है। मेरे इस कथा-क्रम का वर्ण्य विषय उनका वही जीवन-खण्ड है।

भगवान श्रीकृष्ण पर लेखन-पूर्व मुझे यह अत्यन्त आवश्यक लगा था कि मैं सामाजिक, राजनीतिक उथल-पुथल से पूर्ण, मूल्यों के उखड़ाव की उस धरती को पहचानू, जिस पर उन्होंने जन्म लिया था।

'कालचक्र' में श्रीकृष्ण के जन्म से पूर्व मथुरा की राजनीतिक-सामाजिक स्थिति का वर्णन है। तत्कालीन भारत या 'भरत-खंड' का वह सामाजिक-राजनीतिक धरातल कैसा था और वे कौन-सी स्थितियां थी, जिनमें श्रीकृष्ण जनमे, इसका संकेत मात्र कराना ही इस उपन्यास का कथ्य है। मैंने श्रीकृष्ण-कथा पर आधारित सभी उपन्यासों में यथासभव यह प्रयत्न किया है कि उस काल-खंड की घटनाओं, राजनीति-चक्र और चरित्रों का वर्णन

पूर्णतः वैज्ञानिक आधारों के साथ-साथ मानवीय गुण-दोषों को सहेजे हुए चले। यह प्रयत्न भी मैंने किया है कि 'महाभारत', 'श्रीमद्भगवद्गीता', 'हित-हरिवंश', 'श्रीमद्भागवत पुराण' आदि के रूपकों को यथासंभव वर्तमान सन्दर्भों से जोड़कर देखते हुए उनका गद्यात्मक प्रस्तुतीकरण करूं। मेरा प्रयत्न रहा है कि मैं श्रीकृष्ण और श्रीकृष्ण-कथा से जुड़े पात्रों को वर्तमान सन्दर्भों में देखूं, समझूं और व्यक्त करने की चेष्टा करूं।

इस उपन्यास-माला के संयोजन-आधार में तत्कालीन समाज और उसके चरित्रों को लेकर मैं किस दृष्टि से सोचता हूं या मैंने विचार किया है, इसे जानने के लिए इस खंड के अन्त में एक आधार-लेख भी पाठक मित्रों तक पहुंच रहा है।

इसके बावजूद यदि कहीं कुछ मुझसे छूटा हो अथवा लेखिकीय त्रुटिवश रह गया हो, तो निस्सन्देह अपने स्नेही पाठकों के प्रति मैं दोषी हूं। वैसे यह स्वीकारते हुए मुझे अपने अग्रज लेखकों की तरह तनिक भी संकोच नहीं है कि श्रीकृष्ण के समुद्रवत् चरित्र का संयोजन कर पाना एक नहीं, अनेक जन्मों में भी दुष्कर कार्य है।

आज के सन्दर्भ में मुझे श्रीकृष्ण-चरित्र का हर अंश और कोण अत्यधिक व्यावहारिक और अनिवार्य लगा, अतः मैंने प्रयत्न किया है कि उनके समय-काल की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक स्थितियों को यथासम्भव वैज्ञानिक और ऐतिहासिक आधारों के साथ प्रस्तुत करूं। यह कहने की भूल तो मैं नहीं करूंगा कि उसे समग्रता के साथ कर पाया हूं; किन्तु अति-विनम्रता के साथ यह अवश्य कह सकता हूं कि 'मानव और ईश्वर' के प्रति यह मेरी एक श्रद्धापूर्ण चेष्टा है। उचित होगा कि पाठक मित्र इसे श्रीकृष्ण के विराट रूप की कसौटी पर न कसकर केवल मेरे लेखकीय प्रयत्न की कसौटी भर पर कसें। मैं पाठकीय प्रतिक्रियाओं का सदा ही आदर करता आया हूं, इस बार भी करूंगा।

—रामकुमार भ्रमर

५३/१४, रामजस रोड, करोल बाग
नयी दिल्ली-११०००५

रथ सुन्दर था—उससे कहीं अधिक सुरुचिपूर्ण सजावट थी उसकी। रथ के माथे ध्वज लहराता हुआ। झिलमिलाहट के साथ सूर्य-किरणें-जैसे चीख-चीख कर कह रही थी, 'सावधान !''' मगधराज जरासन्ध के तेज की बिजलियां कौंधती जा रही है''''

भव्य रथ के आगे-पीछे और भी सुसज्जित रथ थे। सारथी गौरव से भरे और गर्व में डूबे हुए। सहज ही था। जरासन्ध की शक्ति हर मगध-वासी को इसी गरिमा और गौरव से भरे रहती थी। भरत खंड का कौन-सा राज्य है जो इस तेज को सह सके ?

रथ की गति तीव्र थी। लक्ष्य के बहुत पास आ पहुंचे थे वे। कुछ घड़ियों के बाद ही उन्हें मथुराधिपति उग्रसेन के नगर-द्वार में प्रवेश करना था। जैसे-जैसे सारथी रथ की गति बढ़ाता, वैसे-वैसे मुख्य रथ के भीतर बैठे दूत सुषेण के माथे में तीव्रगति सागर लहरों की तरह विचारों का सिलसिला उठने लगता'''क्या-क्या प्रश्न किये जा सकते हैं ? और सुषेण की ओर से उनका क्या उत्तर होगा ?

रह-रह कर सुषेण की हथेली अपने समीप रखी उस सुन्दर पेटी को सहलाने लगती, जिसमें मगधराज की ओर से मथुराधिपति उग्रसेन के नाम सन्देश था ''बहुमूल्य पेटी। मुलायम मखमल से सजी हुई। उसके भीतर राजकीय सन्देश का रेशमी पत्र !'''जिस क्षण भोजपति के हाथों पेटी थमायी जायेगी, उस क्षण वे और उनके मंत्रिगण, अधीनस्थ राजाओं की सभा आनंदमिश्रित उत्सुकता से भर उठेगी—क्या होगा उस भव्य पेटिका में ? निश्चय ही भारत की सर्वाधिक शक्ति सम्पन्न सत्ता की ओर से कोई

चौंकाने वाला समाचार होगा !···समाचार, जो आनन्द के सागर में भी भिगो सकता है और समाचार जो समूची मथुरा और यादव गणसंघ की धरती को भूकम्प का अनुभव भी करा सकता है !···

पर सुषेण *जानता था—क्या है पेटिका के भीतर ?···और जो कुछ* है, उसे लेकर मथुराधिपति से वार्ता के दौरान उसे क्या-क्या कहना है ? शब्द इसी तरह मखमल में लिपटे होंगे, स्वर—चाशनी से भीगा होगा किन्तु उनका प्रभाव होगा असंख्य बिच्छुओं के एक साथ डस लेने-जैसा !··· प्रतिक्रिया—सिर्फ एक सन्नाटा !

यह सन्नाटा, धीमे-धीमे राजभवन के द्वारों, खिड़कियों और रोशनदानों से बहता हुआ धुएं की तरह सम्पूर्ण यादव गणसंघ के आकाश पर बिखर जायेगा। *खिलखिलाते, हंसते, क्रीड़ा-किल्लोल में रसरंगे चेहरे अनायास* ही घुटन से भरकर मृत्यु-यंत्रणा बोलने लगेंगे। मगधराज का आतंक उन पर हौले-हौले यम की कालिख बनकर चेहरों पर फैल जायेगा। कितनी ही लताओं-जैसी सुन्दरियां सहमकर मुर्झा जायेंगी, कितने ही बालक सहसा अपने कोमल तलवों के नीचे हरी दूब की जगह तपते बालू की तिलमिलाहट अनुभव करने लगेंगे। बहुत से वृद्धों की जीवन शक्ति पतझर में झरते पीले पत्तों की तरह लड़खड़ा उठेगी और युवा मन बरसों से वर्षारिक्त खेती की तरह बंजर हो जायेंगे !···

मखमल में लिपटे इस सन्देश का केवल मथुरा पर ही ऐसा प्रभाव होगा—ऐसा नहीं है। सुषेण जानता है कि जब-जब ऐसा सन्देश किसी राजा, राज्य, गणसंघ अथवा समुद्र-पार की सत्ता को मिला है, तब-तब *ऐसा ही हुआ है !···फिर मथुरा तो बहुत छोटी, साधारण-सी सत्ता* ठहरी !···राजा वृद्ध। गणसंघ के सभी यादव राजा बिखरे और तने हुए।

एक पल के लिए जाने क्यों सुषेण को ऐसा लगा जैसे यह सब ठीक नहीं होगा। जब-जब सुषेण इस तरह के मखमली राजसन्देश लेकर मगध से किसी राज्य की ओर बढ़ा है, तब-तब उसे ऐसा ही लगता है—किन्तु बाध्य है वह। यह सब करना-निबाहना उसकी नियति। मगधवासी के नाते ही नहीं, मगधराज के कर्तव्यनिष्ठ सेवक के नाते भी यह उसका धर्म !···

सहसा रथ की गति हल्की हुई। सुषेण की विचारशृंखला टूट गयी।

क्या हुआ ? प्रश्न मन में ही उठा। उसके पूर्व सारथी ने मुड़कर रथ का रेशमी परदा उठाया, सूचना दी, 'मथुरा का नगर-द्वार आ पहुंचा है श्रीमान् !···'

'अच्छा !···'हौले से सुषेण ने कहा, फिर आदेश दिया, 'द्वार के प्रहरी अथवा अधिकारी को सूचना दो कि मगध के राजदूत आये हैं।"

'जैसी आज्ञा, श्रीमान् !' सारथी ने कहा। रेशमी परदा झिलमिलाकर पुनः गिर गया। बाहर से कुछ लोगों की धीमी-तेज, ज्वार-भाटे-जैसी आवाज आने लगीं। सुषेण शान्त भाव से बैठा रहा।

थोड़ी ही देर बाद रथों को पुनः गति मिली। रथ मथुरा के नगर-द्वार में प्रवेश कर चुके थे···नगर की चहल-पहल और सनसनी, हौले-हौले ही सही, पर सुषेण के कानों में पक्षियों के शोर की तरह सुनायी पढ़ने लगी।



महाराज उग्रसेन विश्राम-कक्ष में थे। सुषेण के स्वागतार्थ श्वफल्क उपस्थित हुए। मथुराधिपति के वंशज। वृद्ध थे। राज्य के विशिष्ट व्यक्तियों और सभा के महत्वपूर्ण मंत्रियों में से एक। सुषेण की अगवानी सम्पूर्ण राजकीय शिष्टाचार के साथ की गयी। स्वाभाविक भी था। मगधराज जरासन्ध का दूत अपने आप में किसी राजा से कम महत्वपूर्ण और शक्ति सम्पन्न नहीं हो सकता था।

राजनिवास के विशेष अतिथि-कक्ष को तुरन्त खुलवाया गया। रथों को यथास्थान ठहराने के साथ-साथ सुषेण के साथ आये मगधी सैनिकों के स्वागत की भी व्यवस्था हुई। सुषेण ने सन्तोष अनुभव किया।

सामंत श्वफल्क राजा उग्रसेन के सम्बन्धी भी थे—वंशज भी। यादव गणसंघ में उनकी अपनी सत्ता स्वीकारी जाती थी। राजकीय शिष्टाचार निबाहकर सुषेण से कहा था—'दूत !···आप लम्बी यात्रा करके आए हैं—विश्राम करें। महाराज उग्रसेन इस समय आराम कर रहे हैं। समय पर उन्हें आपके आगमन का सन्देश दिया जायेगा। आपसे मिलकर निश्चय ही वह बहुत प्रसन्न होंगे।'

'आभार, मंत्री महोदय !···मैं सन्तुष्ट हूं।'

'किसी विशेष वस्तु की आवश्यकता हो तो अवश्य

व्यवस्था करके हमें आनंद होगा।'

'बस, सब ठीक है। 'सुषेण ने उत्तर दिया—'अब केवल महाराज के ही दर्शन की प्रतीक्षा है।'

श्वफल्क लौट गये। सुषेण एक बार पुनः उसी विचारक्रम से जा जुड़ा, जो मथुराधिपति के सामने राजकीय वार्ता का विषय बनने वाला था।



उग्रसेन ही नहीं, सभी के लिए चौंकने वाली बात थी - भला जरासंघ के दूत का आगमन किस कारण हुआ है ? यों दूतों का राज्यों में *आना-जाना, सन्देश देना-पहुंचाना कोई नयी बात नहीं थी*—*किन्तु* मगधराज के दूत का आगमन एक मथुरा ही नहीं, किसी राज्य या राजा के लिए चौंकाने वाला विषय था। विशेषकर उन राज्यों के लिए जो मगधराज से स्वतन्त्र सत्ता और अस्तित्व बनाये हुए थे। जरासंघ की शक्ति लोलुपता, आतंक और विभिन्न राज्यों को आधीन रखने की प्रवृत्ति *न किसी के लिये अजानी थी, न ही नयी बात।*

मथुरा के घर-घर में उसी क्षण चर्चा का एकमात्र विषय बन गया था राजदूत सुषेण। क्यों आया होगा ? क्या मगधराज की लालची आंखें यादवों की स्वतन्त्र सत्ता पर भी जा ठहरी हैं ? या मगधराज जरासंघ मथुरा क्षेत्र से कहीं इधर-उधर निकलने वाले हैं ? सब रहस्य। हर रहस्य पर परत-दर-परत अंधेरे की अनेक परतें चढ़ी हुईं। हर परत सवालों के फन्दों से जुड़ी-बनी। हर परत के नीचे आशंकाओं और भावनाओं के अनेक कांटे। हर कांटा मन में लगता हुआ। हर चुभन चिन्ता की चिंगारियों से भरी हुई! ··

हर मन से व्यग्र, व्यथित उच्छवास उठते हुए—'शुभ करें भगवान्!·· कुछ अनिष्ट न हो!'

राजा उग्रसेन जिस क्षण विश्राम कक्ष में जागे, उसी क्षण श्वफल्क, सत्यक और युवराज कंस जा पहुंचे थे। सब चिन्तित, व्यग्र, उत्तेजित, और थके हुए से। वृद्ध राजा ने चकित होकर उन्हें देखा। कुछ पूछ सकें, इसके पूर्व ही श्वफल्क ने कहा था, 'प्रणाम राजन्!···मगधराज जरासंघ का

दूत आया है।

उग्रसेन ने सुना। एक पल के लिए लगा कि एक थर्राहट मन से उठी और चेहरे की झुर्रियों से लेकर तलवे की लकीरों तक बिखर गयी। उत्तर में शब्द निकलने से पहले गला कुछ अटक अनुभव करने लगता था। थूक का एक घूंट निगला, फिर अपने को सहेजते हुए पूछा, 'ऐसा क्या कारण हुआ ?'

'दूत के आगमन का कारण तो दूत से ही ज्ञात हो सकता है, मथुराधिपति !···' सत्यक ने उत्तर दिया—'किन्तु इतना निश्चित है, कि दुष्ट जरासन्ध के दूत का आगमन किसी के लिए शुभकर नही हो सकता !··· वह मदान्ध निश्चय ही यादव गणसंघ की स्वतंत्र सत्ता को नष्ट करना चाहता होगा।'

उग्रसेन ने सुना। कुछ बोले नही। या बोल नहीं सके ?···संभवतः बोल ही नही सके थे। पल भर पहले के जागरण ने अलसाये शरीर और मस्तिष्क को अनायास ही सही, किन्तु अब तक बेसुध-सा बनाये रखा था।

एक पल के लिए कक्ष में चुप्पी बिखरी रही, फिर राजा ने प्रश्न किया, 'क्या दूत के विश्राम की उचित व्यवस्था हुई ?'

'वह सब हो चुका है, महाराज !···'श्वफल्क ने उत्तर दिया—'पर दूत शीघ्र ही आपके दर्शन करने को व्यग्र है।'

राजा ने कुछ क्षण पुनः सोचा। कहा, 'ठीक है। प्रातः सभा में उसे उपस्थित किया जाये।'

'जैसी आपकी इच्छा !' श्वफल्क मुड़े, तभी वृद्ध राजा ने कहा—'सन्ध्यावन्दन के पश्चात् आप सभी मेरे मंत्रणा-कक्ष मे उपस्थित हो।'

'जी।' उन्होंने सिर झुकाये—चल पड़े। श्वफल्क ने सुषेण को सन्देश पहुंचाया।

महाराज उग्रसेन चिन्ताग्रस्त पलंग के सिरहाने सिर टिकाकर लेट रहे। लगता था कि उनके हर ओर प्रश्नवाचक चिन्ह लटके हुए हैं···हर चिन्ह मन और माथे को कुरेदता हुआ···जरासन्ध का राजदूत ?···पर क्यों ?···किस कारण ?···

अन्य कोई कारण सूझ नहीं रहा था—जो कारण सूझ रहा था उसने मन-शरीर को हचमचा डाला था !

[]

सांझ ढली। मन्दिर-शिवालों में सन्ध्यावन्दन हुआ। राजा भी राज मन्दिर से पूजा करके लौटे। रोज पूजा के बाद रनिवास जाया करते थे, किन्तु आज पहुंचे मंत्रणा-कक्ष में। जरासन्ध का दूत क्या सन्देश लाया है, यह अनिश्चित था, किन्तु आशंकाओं को लेकर ही विचार कर लेना चाहते थे।

श्वफल्क, सत्यक और युवराज कंस पहले से ही प्रतीक्षारत थे। राजा ने क्रमशः प्रौढ़ायु श्वफल्क-सत्यक को देखा, फिर अपने युवा पुत्र की ओर। गठीले और उग्र स्वभाव-शक्ति वाले युवराज की राजनीतिक योग्यता में भी सन्देह न था। कभी-कभी पिता-पुत्र में तर्कवितर्क भी हो जाते थे। कंस राजनीतिक निर्णयों के मामले में बहुत संवेदनहीनता से काम लेते। उग्रसेन यह सोचकर किसी-न-किसी पल व्यग्र भी हो जाते थे। बेटे की उद्दण्डता और उग्रता मन में भय जनमती। भविष्य के प्रति चिन्तित भी हो उठते। राजा बनने पर कंस सत्ता को स्नेह के बजाय आतंक से संचालित न करने लगे? बहुत बार सोचा था उन्होंने। बहुत बार कंस को संकेत भी किया था। राजा के लिए तामसी होना आवश्यक तो है, किन्तु क्रोधी और कटु नहीं। स्वभाव की उग्रता और शक्ति का एकत्रीकरण कभी-कभी मनुष्य को मनुष्यताहीन भी बना डालता है—कंस को सतर्क होना चाहिए !···

नहीं जानते कि पुत्र पर कितना प्रभाव होता था, कितना नहीं किन्तु बहुविधि कहासुनी के बावजूद अपरिवर्तित स्वभाव और दृष्टि चिन्तित करती जाती थी। यह चिन्ता भी न होती—यदि कंस भविष्य का गणसंघ प्रमुख न होता···यादव कुल के अनेक राजाओं में से कोई एक होता।

गाहे-बगाहे कंस की उत्तेजित मात्रा में वार्ता भी मन को डराने लगती। कहीं ऐसा न हो कि मथुराधिपति का गौरवशाली आसन संभालने के बाद कंस यादवों में ही कुल-क्लेश का कारण बन जाये ?

पर जानते थे उग्रसेन—कुछ नहीं कर सकेंगे। इसलिए कि कुछ किया भी नहीं जा सकता। कंस जन्मशः उद्दण्ड, क्रोधी, लोलुप, और क्रूर था ! उसे

बिखेर देना सहज, सहेज पाना असंभव !

उग्रसेन ने कुछ अपने शान्त स्वभाव, कुछ सहजता के कारण सब कुछ भाग्याधीन छोड दिया था।

राजा ने कक्ष में प्रवेश किया—सम्मान में वे सब-उठ खड़े हुए।

राजा शान्त भाव से आसन पर बैठे, पूछा— 'तुम्हारा अनुमान क्या है श्वफल्क, मगधराज ने दूत किसलिए पठाया होगा ?'

श्वफल्क ने माथे पर सलवटें डाली, तनाव पर काबू किया, सन्देश सुनने के पूर्व तो कुछ कहा नहीं जा सकता, भोजराज !···पर यह क्या अनुमान कर सकता हूं कि सत्ता और शक्ति का केन्द्रीयकरण करने वाले जरासन्ध का दूत किसी राज्य में शुभ संदेश लेकर नही आ सकता !···फिर यादव गणसंघ ही शेप है, जो जरासन्ध की सत्ता के आगे अब तक स्वतन्त्रता जिलाये हुए हैं।'

'मैं भी वृष्णि कुल गौरव की सम्मति से सहमत हूं, महाराज ?' सत्यक ने तुरंत कहा था—'निश्चय ही जरासन्ध का दूत हमारी स्वतन्त्र सत्ता समाप्ति की सूचना लेकर आया होगा !'

'और तुम क्या कहते हो कंस ?' उग्रसेन बेटे की ओर मुड़े।

'मैं अनुमानों, और आशंकाओं पर विचार नहीं करता, पितृ !···'कंस ने तीखी आवाज में उत्तर दिया था—'मुझे तो यह विचार-गोष्ठी ही उस समय तक अर्थहीन लग रही है, जब तक कि दूत का सन्देश न सुन-पढ़ा लिया जाये।'

'तुम एक बात भूल रहे हो, पुत्र !···'उग्रसेन ने मीठी आवाज में पुनः कहा, 'मथुरा के भोजवंशियों पर केवल मथुरा का दायित्व नहीं है। वे समस्त शूरसेन जनपद के प्रमुख हैं। जिस क्षण जरासन्ध का दूत सन्देश देगा, उस क्षण उस सन्देश का उत्तर देना कठिन हो जायेगा। यादव गणसंघ के अनेक राजाओं से सम्मति लेकर ही मगधराज जैसी शक्ति को कोई उत्तर दिया जा सकता है। छुटपुट मामले में मेरा निर्णय कर देना ठीक होगा युवराज, पर···इतनी बड़ी सत्ता को उत्तर देने के पूर्व मैं चाहता हूं संघ के के सभी लोगों से सम्मति लूं।'

'यादव गणसंघ के सभी शुभाशुभ का दायित्व भोजराज पर यादवों ने पहले ही छोड़ रखा है।' कंस ने तर्क किया—'आप किसी भी स्थिति में, कोई भी निर्णय लेने के लिये स्वतंत्र हैं राजन् !'

'नैतिक रूप से मैं इसे उचित नहीं मानता पुत्र !…' उग्रसेन ने कहा था—'यादव जाति के अन्धक, वृष्णि और भेघों ने यदि मथुरा पर यह विश्वास छोड़ा है, तब हमें उस विश्वास को उसी गणतंत्रीय पद्धति से सम्भालना होगा।'[1]

'किन्तु पितृ इस क्षण सभी कैसे एकत्र हो सकेंगे ?' कंस ने पूछा।

'उन्हें इसी क्षण सन्देश भेजा जा सकता है।' उग्रसेन ने कहा—'कल मगधराज का दूत हमें सन्देश देगा। उस बीच तक शूरसेन जनपद के सभी राजाओं, कुलबन्धुओं का समाचार मिल जायेगा…उन सबकी उपस्थिति में विचार करके ही दूत को उत्तर दे दिया जायेगा।'

'और यदि सन्देश में विचारयोग्य कुछ हुआ ही नहीं, तब ?' कंस ने पुनः तर्क किया…

'तब भी कुलजनों से भेंट करने में क्या दोष है ?' उग्रसेन ने आदेशात्मक स्वर में कहा।

कंस कुछ तनाव अनुभव करते हुए चुप ही रहे। उग्रसेन बोले थे—'यह संयोग मात्र है सत्यक कि तुम और श्वफलक यहां हो। वृष्णि वंश के केवल सत्राजित और शूरसेन का आना ही शेष है…इसी क्षण उन्हें तुरंत आने का संदेश दिया जाए…'

'जैसी आपकी आज्ञा, राजन् !' सत्यक ने सिर झुका दिया।

उग्रसेन ने कहा था—'बन्धुवर देवक और कृतवर्मा को भी सन्देश दे दिये जायें। कल सभा-समय के पूर्व वे भी यहाँ आ पहुंचेंगे।'

---

१. यदुवंश की ३२वीं पीढ़ी में आहुक नामक एक राजा हुए। वह भोजवंशी थे। आहुक के दो बेटे थे—देवक और उग्रसेन। उग्रसेन मथुरा के राजा बनकर संपूर्ण शूरसेन जनपद के प्रमुख बने। देवक को एक पुर का राज्य मिला। इन्हीं देवक की कन्या देवकी थी…जो उग्रसेन के पुत्र कंस की चचेरी बहिन थीं। देवक, मथुरा के प्रमुख राजपुरुषों में थे, अतः राजा ही कहलाये। मथुराधिपति यादव संघ के प्रमुख कहलाते थे।

दीखने लगा है। जरासन्ध की मदान्ध शक्ति और साधनों से सम्पन्न सेनाओं के घेरे की पूर्व-सूचना देता हुआ···फिर भयानक अस्त्र-शस्त्रों की टंकारें गूंजती है···उन टंकारों के बाद उठती हैं असंख्य चीख-पुकारें—बूढ़े, आबाल, वृद्ध, वनिताओं की कातर पुकारें, घायलों की कराहों के स्वर,···

*मन थरथरा उठा था···न-न !···यह सब नहीं होना चाहिए !···*कभी नही। सजे-संवारे वैभव को गला डालने, राजमुकुट को खो देने मे कौन-सी बुद्धिमत्ता होगी ?

कभी नहीं !···क्या कंस युवराज ही बने रह जायेंगे ? भोजपति बनने का स्वप्न अपूर्ण रह जायेगा। कभी नही। स्वतन्त्रता के नाम पर ऐसी मूर्खता नही की जा सकती। हानि भी क्या है यदि जरासन्ध की सत्ता स्वीकार ली जाये ? उससे अच्छे सम्बन्ध बनाये रखे जायें ?···

एक-एक कर अनेक राज्य और राजा याद आने लगे हैं कंस को। बहुतेक तो उसके रक्त-सम्बन्धी हैं। ऐसे जिनके पास मथुरा से भी कहीं अधिक शक्ति थी—पर सबने चुपचाप जरासन्ध से मैत्री की है।···वह यादव गणसंघ भी कर सकता है···। इसमें महाराज उग्रसेन के लिए इतना चिन्तित होने की क्या आवश्यकता···? राजनीति में भी कहा गया है—समय जिसे शुभ समझे, उसी को घटाये···। यही नीति। यही ज्ञान। यही राजत्व···।

एक गहरा सांस लिया। कक्ष मे पहुंचे। सेवक आ गये। वे युवराज के जूते उतारने लगे। दूसरा गया, दौड़कर जल-पात्र ले आया। युवराज आसन पर बैठे। चरण पात्र मे रख दिये···सेवक ने होले-होले उन्हें धोना प्रारम्भ किया।

कंस को लगा कि थक गये हैं। सोचते-सोचते थक गये हैं। पूछा, 'देवी मानसी कहां हैं ?'

'अपने भवन में है, युवराज !···' सेवक ने तत्परता से उत्तर दिया।

'कहो कि हम स्मरण करते हैं।' कंस ने पाव पात्र से निकाले। सेवक ने उन्हें पोंछ दिया। युवराज आसन पर आंखें मूंदकर लेट गये।

मानसी।

सेविका ने कंस के सन्देशवाहक को द्वार पर ही रोक लिया था, 'देवी, किसी कार्य में व्यस्त हैं।'

'किन्तु युवराज ने उन्हें इसी क्षण स्मरण किया है।'

'तुम तनिक यहीं ठहरो। मैं पूछकर आती हूं...' सेविका ने द्वार खोला कंस का सैनिक बाहर ही खड़ा रहा। द्वार अपने पीछे बन्द कर वह निश्चिन्त भाव से मानसी के सामने जा खड़ी हुई।

मानसी किसी से वार्ता-व्यस्त थी। एक युवक उनके सामने बैठा था। गंभीर और चौकन्ना। सेविका ने उसे अनदेखा कर दिया। मानसी के सामने पहुंचकर निवेदन किया, 'देवी!...युवराज ने आपको स्मरण किया है।'

'कहां हैं वह?'

'अपने कक्ष में।' सेविका ने कहा—'उनका सन्देशवाहक बाहर खड़ा हुआ है।'

'उससे कहो, मैं उपस्थित होती हूं।'

सेविका ने सिर झुकाया। उसी तरह यंत्रवत् लौट पड़ी। मानसी उसे जाते हुए देखती रही, फिर सामने बैठे युवक से कहा, 'अब मैं चलती हूं वकुल!...कल सभा में सन्देश देने के बाद दूत सुषेण विश्राम करें। उन तक युवराज की मनःस्थिति और सभाभवन में हुई बात की चर्चा-वार्ता के सारे समाचार पहुंच जायेंगे।'

'अच्छा, देवी!' वकुल उठ खड़ा हुआ। मानसी उसे भवन के पिछले द्वार तक विदा करने गयी फिर शीघ्रतापूर्वक साज-शृंगार करके युवराज के

निवास की ओर चल पड़ी। चलते समय मन हल्कापन अनुभव कर रहा था।'''वह दिन आ पहुचा, जिसकी भूमिका बनाते हुए मानसी ने कई माह खर्च कर डाले थे'''कैसे-कैसे उतार-चढ़ाव नहीं झेलने पड़े थे युवराज कंस को जीतने-समझने और समझाने के लिए ?'''किस तरह कंस तक पहुंची थी वह ?'''

पहुंची थी या पहुंचायी गयी ?

शायद दोनों ही शब्द सही है। पहले पहुंचायी गयी थी मानसी, फिर पहुचो।'''वह पहुंचाने और पहुंचने की क्रिया अब याद करती है तो स्वप्न-सी अनुभव होती है। कई माह पहले का वह दिन'''मानसी को लगा था कि चलते-चलते अपने ही विगत को चित्र की भांति मस्तिष्क-पटल पर उभरते देख रही है'''हर दृश्य'''हर क्षण'''और क्षण में मन के भीतर बीतते-रीतते अनेक वर्ष !'''



वह देर से उस बीहड़-वन के उतारवाले रास्ते में आंखें गड़ाये हुए थी'''कितना समय बीता होगा—याद नहीं। पर इतना याद है मानसी को, कि जिस समय बकुल उसे इस जगह छोड़ गया था—तब चारों ओर धूप बिखरी हुई थी।

पर अब धूप धीमे-धीमे धुंधलाहट भर बन कर रह गयी थी। बीहड़ सन्नाटे से पक्षियों का कलरव गूंगा होने लगा था। उसकी जगह ले ली थी—एक थर-थराते, कड़वे स्वर ने। कीड़े-मकोड़ों के स्वर। ये स्वर बढ़ते अन्धकार के साथ-साथ गहरे और तीखे होते जा रहे थे, लगता था कि मानसी के बदन पर अपने पतले नुकीले पंजो को जमाने लगे हैं'''।

कुछ अंधेरा और बढ़ेगा और फिर सन्नाटा बिखर जायेगा। इस सन्नाटे मे कीड़े-केकड़ो की टागें मानसी के बदन पर रेंगने लगेंगी। घिन, आतंक और भय मे डूबने लगेगी मानसी। कोमल बदन पसीने की चिपचिपाहट से भर जायेगा। श्वासो की गति भी बढ़ उठेगी'''शायद हाफने लगेगी वह !

अनायास ही मानसी को अनुभव हुआ, जैसे वह हांफ रही है'''वह अभी से हाफने लगी है। अपने ही भाग्य लेख पर चिढ़न और कुढ़न से भर —ी मानसी। बेबस स्थिति केवल खीझ बनकर रह गयी। अपने को ही

कोसना शेष रहा उसके पास !

उसे इसी क्षण नहीं कर देनी थी, जिस क्षण उसे यह काम सौंपा जा रहा था। पर नाहीं कैसे की जा सकती थी ?···असंभव !

मानसी को लगा था कि अन्धकार के बावजूद उसके सामने मगधराज का चेहरा उभर आया है···साक्षात् आतंक और यम की तरह डरावना ! चेहरे-मोहरे से जरासन्ध अनाकर्षक या असुन्दर नहीं है—किन्तु उसकी शक्ति, सम्पन्नता, क्षमता और क्रोधी स्वभाव ने उसके प्रभावशाली व्यक्तित्व को केवल ज्वालामुखी बना रखा है। बदली हुई दृष्टि लावा बहाती-अनुभव होती है। किसी अस्वीकार के उत्तर में उठा चेहरा साक्षात् मृत्युदंड लगता है···

नहीं !···मानसी उसके आदेश पर स्वीकार के अतिरिक्त और कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं कर सकती थी। वही क्यों, उसकी जगह भरत खंड का कोई भी शक्ति सम्पन्न व्यक्ति क्यों न होता—वह भी शीश झुकाये रखता !

मगधराज बोले थे—'तुम बकुल के साथ उस निश्चित स्थान पर पहुंचोगी, जहां से युवराज कंस आखेट से लौटते हुए निकलते हैं···और उसके बाद तुम्हें वही सब करना है जो तुम्हें पहले बतलाया जा चुका है।'

सहमती, अपने ही भीतर गलती हुई सी मानसी चुपचाप खड़ी रही थी। एक पल के लिए लगा कि मगधराज की भारी आवाज ने उसके शरीर को अनेक विद्युत्-तरंगों से भर डाला है···ये तरंगें मानसी के भीतर से सहृ सोखने लगी हैं—किन्तु उसे दृढ़ता से काम लेना था। गुप्तचर विभाग के एक महत्वपूर्ण अधिकारी ने उसे महीनों प्रशिक्षण दिया था कि अपने भीतर को अव्यक्त रखना ही गुप्तचर-धर्म का पहला नियम है। उसने अपने आपको अव्यक्त रखा। कितना लहू सूखा, कितना मन रिसा, किस तरह साहस थर्राया और कैसे मानसी अपने को रेशे-रेशे बिखेरन में पाकर भी बटोरे रही—मानसी को इस क्षण याद नहीं।

मगधराज ने अधिक बात नहीं की थी। कहा था, 'अब तुम जा सकती हो।' और मानसी इस तरह मुड़ी थी जैसे किसी सिंह की गुफा से भागी हो। अनायास याद हो आया था उसे। महाशक्तिशाली सम्राट को नमन् करना है। उसने तुरन्त अपने को संभाला, नमन किया और अपने ही चरणों

की तीव्रता को बांधने का प्रयत्न करती हुई जैसे-तैसे मुड़कर द्वार से बाहर हो गयी।

सहसा श्वांस उबलकर बाहर आ गये थे मानसी के। वे सारे श्वांस, जो कुछ पल पहले जरासन्ध के सामने गले के भीतर एक भीड़ बनकर थमे रह गये थे···उसने चार-छह बार फेफड़ों से हवा बाहर फेंककर उनसे मुक्ति पायी थी।

और तभी सैनिक सामने आ खड़ा हुआ था, 'देवी!···रथ तैयार है। गुप्तचर बकुल प्रतीक्षा कर रहे हैं।'

मानसी ने एक पल खाली आंखों से उसे देखा—उत्तर नहीं दिया—चुपचाप उसके आगे-आगे चल पड़ी। फिर वह रथ में बैठ गयी थी···

रथ यात्रा चलती रही···और मानसी विचारहीन होकर इस तरह रथ में बैठी रही जैसे जड़ हो चुकी हो···

यह जडता उस समय टूटी थी—जब इस बीहड़-वन में आकर रथ सहसा थम गया था। बाहर से उभरा तेज स्वर सुना था उसने—'बस!··· यहीं। यही स्थान है।'

रथ थक गया था।



'देवी?···' बकुल का स्वर था।

मानसी ने यांत्रिक दृष्टि से गुप्तचर को देखा—वह सहज था। एकदम सामान्य। मगध का पुराना, अनुभवी गुप्तचर जो ठहरा। उसका चेहरा सामान्य था। इतना स्वाभाविक कि यह किसी बालक की तरह कोमल, अबोध लगता था। मानसी को न जाने क्यों उस पर चिढ़ हुई, फिर लगा जैसे व्यर्थ है उस पर चिढ़ना। बकुल का क्या दोष है? वह भी तो उसी की तरह मगध का सेवक है।···उसका सेवाधर्म—गुप्तचर होना। वही निबाह रहा है···मानसी व्यर्थ ही चिढ रही है उससे?

मानसी रथ से उतरी। बकुल ने एक ओर सुन्दर सन्दूक में रखे उसके बहुमूल्य वस्त्र निकाले, आभूषण दिये। कहा था—'देवी!···तुम उस एकांत में जाकर यथोचित शृंगार कर लो···इस बीच मैं शेष व्यवस्था किये देता ।'

मानसी ने बिना कुछ बोले, सभी चीजों को सम्हाला और वन-क्षेत्र के एकांत में चली गयी।

जब तक मानसी ने नए वस्त्र धारण किये, शृंगार किया, उस बीच तक बकुल बहुत कुछ कर चुका था। झाड़ियों से बाहर निकलकर जब मानसी रथ के पास पहुंची, तब उसने देखा, एक ओर विशाल वृक्ष से टकराये हुए रथ के अवशेष पड़े थे—सब जहां-तहां, सब बिखरे-हुए।

बहुत प्रभावशाली दृश्य बना था। सन्देह की तनिक भी गुंजाइश न थी रथ टकरा-कर चूर-चूर हो गया है···

मानसी ने अपने बहुमूल्य वस्त्रों पर जहां-तहां धूल के धब्बे लगाये, अनेक जगहों से वस्त्रों को घिस डाला···उस क्षण बहुत पीड़ा हुई थी, जब उसके शरीर पर भी अनेक जगह खरोचें डाली गयी। केशसज्जा को एक ओर से अस्त-व्यस्त कर दिया गया। कुछ आभूषण तोड़े या चटका दिये गये।···कुछ समय तक बकुल एक-एक चीज को ध्यान से देखता रहा, फिर निश्चिन्त हुआ था, 'अब, सब कुछ ठीक है।···एकदम स्वाभाविक!'

मानसी तब भी चुप रही। क्या चुप ही थी वह? संभवतः नहीं—वह रह-रह कर डर और सहम से भर जाती थी। जैसे-जैसे वह क्षण समीप आ रहा था, जिसके लिए उसे अपनी सम्पूर्ण अभिनय शक्ति से काम लेना था—वैसे-वैसे भय मन में सघन होता जा रहा था। इस बीहड़-वन की ही तरह।

उसी समय बकुल बोलने लगा था···मानसी ने उसकी ओर देखा।

बकुल कह रहा था—'मानसी! वह जो मार्ग दीख रहा है ना, उसी से युवराज कंस आखेट करके लौटेंगे···निश्चित समय तो नहीं बतला सकता, किन्तु अनुमानतः सन्ध्या और रात्रि के किसी प्रहर में उनकी वापसी होगी···रथ के ये टूटे आवशेष उनकी राह रोकेंगे। तुम उस वृक्ष के सहारे बैठी होगी···किस तरह बैठी होगी—यह तो तुम जानती ही हो?···युव-राज बहुत रसिक स्वभाव नहीं हैं—किन्तु पुरुष तो हैं ही···शेष स्थिति के अनुसार सभी कुछ तुम सहेज लोगी—जानता हूं।'

मानसी ने उत्तर न देकर सुना और केवल देखा···वह दिशा, जिस ओर से कंस के आगमन का संकेत किया था बकुल ने···एक अनुमानित

चेहरा जो कंस को लेकर उसके सामने मगध मे ही शब्दचित्र से वर्णित किया गया था···रसिकताहीन मुसकान जो केवल पुरुष के चेहरे पर हो सकती थी···।

और उसे पिघलाकर रसिकता में बदलने की मानसी की अपनी अभिनयकला, जो उसे उपयोग करनी थी···

मानसी ने एक गहरी श्वांस लिया था—बस।

बकुल ने कहा था, 'कुछ विशेष जानना हो तो पूछ सकती हो तुम।'

'नही।' मानसी ने उत्तर दिया था।

'तब मैं चलता हूं—' बकुल ने अपने रथ की ओर मुड़ते हुए कहा था—'मुझे विश्वास है कि मगध का गौरव तुम सुरक्षित रखोगी।··· ईश्वर तुम्हारा शुभ करें।' बकुल रथ पर सवार हो गया था, फिर रथ मुड़ा···पुनः मगध के मार्ग की ओर दौड़ पड़ा।

और मानसी टुकुर-टुकुर उस ओर देखती रही। रथ उसकी दृष्टि के पार पहुंचकर गायब हो गया···



तब से कितना समय बीत चुका होगा? मानसी ने सोचा। लगा कि दोपहर से भी अधिक ही हो गए होंगे। मानसी ने दृष्टि पुनः उस दिशा की ओर लगा दी, जिधर से युवराज का रथ आना था···

पर रथागमन के पूर्व तो उसके स्वर उभरने लगेंगे? मानसी ने सोचा। कानों ने झाई के स्वरों से ध्यान हटाकर विशिष्ट ध्वनि सुननी चाही···पर कही कुछ न था। मन आशका से भर उठा मानसी का। कही युवराज ने अपने आने का कार्यक्रम परिवर्तित तो नही कर दिया?···यह भी हो सकता है कि उनके रथ के साथ कोई दुर्घटना हो गयी हो?···

मानसी भय और आशंका की गहन रात्रि से भर उठी। 'हे ईश्वर!··· ऐसा न हो!····' यह कैसे, किस क्षण अपने ही भीतर अपने ही शब्दों को सुनने लगी—याद नही। मस्तिष्क दोहरे विचारो से भर उठा था। इस भयावह वन में मानसी अकेली? उसने कंस के आगमन मार्ग की विपरीत दिशा मे देखा। याद आया। बकुल ने राह मे कहा था····'जिस स्थान पर युवराज से तुम्हारी भेंट होगी, वह मथुरा से आठ योजन दूर है।

मानसी उसी पल शंकित हुई थी। पूछना चाहा था—'यह तो निश्चित है ना कि युवराज उस मार्ग से उस निश्चित तिथि और समय पर निकलेंगे जब मैं वहां रहूंगी ?' पर पूछने के पूर्व ही बकुल बोला था—'युवराज के हर कार्यक्रम की हमें सूचना है। सारी योजना उसी कार्यक्रम और सूचना के आधार पर बनायी गयी है—तुम निश्चिन्त रहना।'''

प्रश्न बुझ गया था।

पर इस क्षण वह प्रश्न पुनः जाग आया। अपने से ही तर्कातर्क कर उठी वह।

हो सकता है कार्यक्रम परिवर्तित न हुआ हो, किन्तु दुर्घटना ?''' संयोग ?'''वे तो मनुष्यायोजित होते नहीं ?

पर मानसी ने बिखरते साहस को सजोया—नहीं-नहीं, व्यर्थ ही भय-ग्रस्त हो रही है मानसी। ऐसा कुछ नहीं होगा। बकुल पहले ही स्पष्ट कर चुका है कि सन्ध्या या रात्रि के किसी प्रहर ही लौट सकेंगे युवराज कंस !'''और अभी तो पूरी तरह रात्रि भी नहीं हुई ?

मानसी ने जबड़े कसे। शांत हो रही'''सहसा उसे लगा था जैसे उसके कानों में रात की डरावनी झुनझुनी को तोड़ती हुई कोई गड़गड़ाहट उभरी है'''फिर और तेज'''और'''

मानसी ने स्वयं को संयत किया'''निश्चित ही रथ है कोई !'''इसी ओर आता हुआ। उत्सुकतावश मानसी का मन हुआ कि खड़ी हो जाए। पर नहीं। उसे यहीं बैठे रहना है'''विशिष्ट मुद्रा में। उसने तुरंत अपने को सहेजा, कपड़े बिखेरे अधलेटी-सी वृक्ष के किनारे लेट रही।

पर आखें उस दिशा में गड़ी हुई, जिधर से युवराज कंस का रथ आना था'''गड़गड़ाहट तेज होती जा रही थी। उसके साथ-साथ उतारवाले मार्ग पर प्रकाश की किरणें कौंधी'''निश्चय ही रथ की प्रकाशिकाएं ज्योति बिखेरती आ रही हैं'''वह ज्योति भी दौड़ती हुई'''मानसी की ओर आती हुई'''

मानसी ने पलकें मूंद लीं। अभिनय का पहला चरण प्रारंभ हुआ। मुद्रा थकन और पीड़ा से भरी हुई। बेसुधी का भाव।

गड़गड़ाहट तेज और तेज होती जा रही थी'''

आंखें मूंदे हुए मानसी का मन पुनः आशंका से भर उठा था···'कहीं ऐसा न हो कि यह रथ युवराज कंस का न होकर किसी और का निकल आये ?···सारी योजना चौपट हो जायेगी !'

पर इस आशंका को लेकर आगे कुछ सोच-समझ या स्वयं को सांत्वना-साहस बंधा सके इसके पूर्व ही रथ की गति हल्की होती हुई लगी···गड़गड़ाहट रुकती हुई। निश्चय ही रथ रुक गया है। मानसी ने पलकें बन्द होते हुए भी कल्पनाशक्ति से स्पष्ट देखा···

चौंके हुए वे सब रथ के टूटे, क्षत-विक्षत हिस्सों को देख रहे होंगे, जिन्होंने मार्ग भी रोक रखा है···और अब संभवतः उनमें से किसी ने मानसी को देखा होगा—



वे क्रमशः यही कुछ देख रहे थे। फिर देखा था मानसी को। युवराज कंस की ओर मुड़कर सारथी बोला था, 'मार्ग अवरुद्ध है, देव !···एक युवती संभवतः मृत या घायल पड़ी हुई है मार्ग में···'

पलकें मूंदे हुए मानसी ने अपने करीब आती हुई पदचापें सुनीं···एक बार फिर उसे लगा कि उसकी धड़कनें बढ़ने लगी हैं···पर तुरंत स्वयं को सम्हाला। कोई हाथ—बहुत मजबूत, चौड़ा पंजा, उसे करवट दिला रहा था···मानसी ने शरीर ढीला छोड़ दिया। पंजे ने उसे सीधा किया···फिर एक भारी स्वर, 'यह जीवित है सारथी !···इसे उठाकर रथ में ले चलो।"

निश्चय ही युवराज होंगे। मानसी ने सोचा। पर आवश्यक नहीं है कि वही हों ? कोई साथी, सहयोगी या सामंत भी हो सकता है—किन्तु स्वर की यह आदेशात्मक गरिमा ?···

'हां, देव !' सारथी का उत्तर मिला।

मानसी ने पुनः हृदयगति तीव्र होती अनुभव की। युवराज ही थे। स्पर्श के स्थान पर बांह में सनसनी अनुभव की उसने। मथुरा के युवराज कंस ने छुआ था उसे। ओह ! कैसी वज्र-देह।···गौरव ने भर दिया मानसी को। सहज था। मगध की एक साधारण मंच-अभिनेत्री और मथुरा का राजसी हाथ···? गौरव की बात ठहरी। मथुरा यादव गणसंघ का मुकुट है। १८ यादव क्षत्रिय कुलों की नेतृत्वशक्ति !

और मानसी रथ में थी—फिर रथ पुनः राजमार्ग पर—आगे बढ़ता हुआ। मानसी सोचती जा रही थी कि युवराज पर क्या प्रभाव हुआ होगा उसके सौन्दर्य का। रसिक नहीं हैं वह—पर रसिकता की जगह एक प्रेमलता उत्पन्न करनी होगी उसे। वही मार्ग बँध बनेगा मगध की राजनीति के चक्र के लिए—इस प्रेमलता का माध्यम बनेगी कंस की संवेदना !— इस संवेदना को जीतना होगा—

रह-रह कर बेसुधी का अभिनय करती मानसी के भीतर उत्तेजना का ज्वार उभरने लगता—योजना का एक चरण पूरा हो चुका था, किन्तु अगला चरण ?—

अगला चरण होगा युवराज कंस से सुध के बीच सामना।

तब क्या होगा ?

सब ठीक ही होगा। अब तक सब ठीक ही तो होता जा रहा था···

पर याद है न मानसी···युवराज रसिक स्वभाव के नहीं हैं। क्षण-क्षण केवल राजनीतिज्ञ हैं। केवल राजपुरुष। तिस पर मगध में ही तुझे सूचना मिल चुकी है कि महाराज उग्रसेन के बाद होनेवाला मथुराधिपति क्रोधी, उग्र और कठोर स्वभाव का है। संवेदन लगभग सोया हुआ। जागृत है मात्र राजस्व !— वह भी सत्ता की उग्र भूख से भरा हुआ केवल राजमोह !

ऐसे व्यक्ति को उसके स्वभाव और इच्छाओं के विपरीत चलना होगा मानसी को। यही नहीं, इस तरह वश में करना होगा कि वह मानसी के कहे सोचे, मानसी के दिखाये, देखे। मानसी के समझाये—समझे !

सहज होगा क्या ?

यह भी हो सकता है कि दुष्कर हो जाये !···यह भी कि वह मानसी को दुत्कार दे।—इस सीमा तक दुत्कार दे कि मानसी जीवन भर उनके सामने आने का साहस न कर सके !

पर मानसी को यह करना था—

न करना मानसी के लिए मगधराज के आदेश की अवहेलना होगी। और मगधराज के आदेश की अवहेलना का अर्थ है—अपना सिर, अपनी ही खंग से काट लेना !

मानसी करेगी !—पलकें मूंदे हुए रथ की गड़गड़ाहट के बीच उसने एक दृढ़ निश्चय बटोरा था। अवश्य करेगी !—

लगता है—उसके बाद की घटनाओं में मानसी ने स्वयं को जिस तरह ढाला, वह अपने आप में योग-साधना का एक चरण बन गया है !—दुष्कर हठयोग की साधना !



जिस क्षण मानसी ने राजकुमार कंस के कक्ष में प्रवेश किया—वह व्यग्र भाव से चहलकदमी कर रहे थे—। मानसी दृष्टि में चंचलता और चेहरे पर सहजता प्रकट कर उनके सामने जा खड़ी हुई थी, "दासी के लिए आज्ञा, युवराज ?'

कंस मुड़े। एक गहरा श्वांस लिया। मानसी के चेहरे को टकटकी लगाये देखते रहे, फिर कहा था—'तुम्हें पाता हूं तो लगता है मन द्वंद्व और समूची राजकीय चिन्ताओं से परे पक्षी की तरह स्वतंत्र हो गया है।'

'देखती हूं, बहुत व्यग्र हैं—कुमार ?' मानसी ने चिन्ता जाहिर की। उनके और पास जा खड़ी हुई।

'जरासन्ध का दूत आ पहुंचा है मानसी !—। 'युवराज बोले—' मैं ही नहीं, सम्पूर्ण मथुरावासी चिन्तित हैं—।'

'मुझे भी ज्ञात हुआ है, युवराज !—' मानसी युवराज के साथ वाले शैयासन पर अधलेटी हो रही। 'यह भी जानती हूं कि मगधराज ने क्या चाहा होगा ? और उपचार भी जानती हूं—'

कंस मुड़े—'उपचार ?—वह क्या है मानसी ?'

'बहुत सहज है कुमार ! मदमस्त गजराज के सामने सम्पूर्ण वीरत्व भी अर्थहीन हो जाता है।' मानसी ने उत्तर दिया था— 'ऐसे समय गजराज को अनुकूल करने का एक ही मार्ग है—उनकी पूजा।'



युवराज कंस थमे रह गये—कुछ देर देखते रहे—फिर आसनारूढ़ हो गये—चुप।

और कर डाला था मानसी ने—परिणाम सामने। कंस उसकी ओर इस तरह देख रहे थे, जैसे जमकर रह गये हैं। आंखें ठहरी और चुप्पी के

बीच कहती हुई—हां, मानसी, सम्भवतः तुम ठीक ही कह रही हो !—यही कुछ करना होगा। ऐसा ही।

मानसी उनके सामने भव्य आसन पर लेटी हुई होले-होले अलसाने का अभिनय कर रही थी। गुदाज शरीर का हर उभार किरनों की तरह आंखें चौंधियाता हुआ। वस्त्र कुछ इस तरह के थे कि मानसी की कटि से लेकर पिंडलियों तक मांस का सुगठाव झलकता हुआ। अभिनय कला में दक्ष मानसी सौन्दर्य गौरव से सधी हुई इतनी निश्चिन्त लेटी थी जैसे कंस उसके सामने अस्तित्वहीन न हों।

कठोर, वज्र स्वभाव कंस को मानसी ने यूं ही नहीं जकड़ा था। या यों कि कंस यूं ही जकड़ जानेवाली शह नहीं थी। कंस को अपने सामने इतनी अवश स्थिति में लाने के लिए मानसी ने जैसे अभिनय-कला की वह सारी दक्षता उंडेल दी थी, जिसके लिए उसने मगध की राजधानी गिरिव्रज में बड़े-बड़े अभिनयाजों से महीनों अभिनय सीखा था। किस मुद्रा, किस भाव में शरीर कहां से लोच ले, किस तरह दृष्टि उठे, कैसी चितवन हो—बहुत कुछ सीखी-समझी थी मानसी। पुरुष को आकर्षित करने से लेकर दास बना लेने तक की क्रियाओं को उसने अपने हर अंग, हर रोम में रचा-बसा लिया था।

कंस शान्त बैठे थे। पर चेहरा उत्तेजना से भरा हुआ। मानसी जानती थी कि द्वंद्व से भर उठे हैं युवराज। इस द्वंद्व को जैसे उसने फिर चिताया था। अंगारे से लपट बनाने की चेष्टा में भरे कुछ शब्द उंडेले, "आप राजनीतिज्ञ हैं युवराज ! मात्र पौरुष ही नहीं, क्षत्रियोचित गौरव-गरिमा और वीरत्व भी हैं आपके पास—किन्तु मगधराज की दुःसह शक्ति से केवल क्षत्रिय दंभ भर में उलझ जाना उचित होगा क्या ?—विदर्भराज भीष्मक भी ऐसी चेष्टा नहीं कर सके।—दक्षिण खण्ड के जिस-जिस राजा ने महाबलशाली जरासन्ध की अवहेलना की, उस-उस ने केवल अपने ही नहीं, अपने सम्पूर्ण राज्य और निर्दोष प्रजा के भाग्य पर अकाल मृत्यु की बिजलियां बरसा दीं !—नाश को जानते हुए भी आमंत्रण देना—कहां तक उचित होगा राजकुमार ? मेरी साधारण स्त्री-बुद्धि तो इतना ही समझ पाती है—इससे अधिक क्या कहूं ?' बात समाप्त करके मानसी ने कंस की दृष्टि क

चोरभाव से देखा—एसे, जैसे पढ़ने की चेष्टा की हो—क्या कुछ लिखा है उसमें ?—या मानसी की दुःसलाह वहाँ, कितने गहरे तक युवराज के मन-मस्तिष्क मे बैठी—प्रभावशीलहु ई है ।

लगा था कि कुछ सहज हुए हैं। पर पूरी तरह नहीं। वह बेचैनी से भरे हुए एक बार पुनः हौले-हौले कक्ष में घूमने लगे थे। मानसी ने देखा कि उनके पीछे बंधे हुए हाथों में अंगुलियां निरन्तर हरकतें कर रही हैं—उनके अवश—उनके मन की तरह अकुलायी, थर्रायी हुई।

एक क्षण के लिए मानसी को लगा था कि वह जो कुछ कर रही है—उचित नहीं है। युवराज कंस ने अपनी कठोरता के बावजूद उसके प्रति गहन संवेदन और विश्वास से ही काम लिया था सदा। मन की हर परत मानसी के सामने खुले आकाश की तरह बिछा रखी थी—पर मानसी सदा ही कालिख से भरी हुई। उनके उग्र स्वभाव को और-और घृणा-प्रतिशोध, कामना और राजमोह के अंधियारों में डुबाती हुई—कितनी बार मन ने नहीं कहा था—'यह गुप्तचर धर्म हुआ मानसी या विषवत् पाप !—कभी विचारा है तुमने ?'

पर हर बार मानसी ने मन मार लिया था। एक ही तर्क बटोरकर—'यह सब धर्म है !—देश और काल का धर्म !—मानसी मगध की बेटी है और उसे जो कुछ सोचना, करना, या जीना-मरना है—केवल मगध की उस धरती के लिए, जिस पर उसने जन्म लिया है—।

इस बार भी मन के उद्वेलन को इसी तरह शात किया उसने। केवल दृष्टि-सत्य से जुड़ गयी।

युवराज थम चुके थे। उनके होठ शब्द उगलने से पहले कुछ थरथराये, फिर कहा था, 'मैं तुमसे हर तरह सहमत हूं मानसी—पर मैं केवल मथुरा का राजकुमार हूं। यादव गणसघ की सर्वोच्च शक्ति और सत्ता हैं—मेरे पितृ। उनके भी साथ है वह मन्त्रि-परिषद् जिसे यादव गणराज्य के नागरिको ने सादर, समर्थन देकर विभिन्न क्षेत्रों का सत्ता-सचालन सौंप रखा है। निर्णय जो भी होगा, वह उन्ही की सर्वसम्मति से होगा।—और मैं जानता हूं वे क्या निर्णय करेंगे।'

'क्या ?' जानते हुए भी मानसी ने पूछ लिया।

'मगधराज की अधीनता का प्रस्ताव वे अपने जाति और राज्य के अपमान स्तर पर लेंगे—निश्चय ही वे युद्ध स्वीकार करेंगे, किन्तु आधीनता नही !'

मानसी ने सुना—एक पल शांत रही, फिर बड़ी मृदु हसी में हंस पड़ी। कंस ने चौंककर उसे देखा, 'तुम हंस रही हो ?'

'हसू नही तो करूं क्या युवराज ?'

'क्या तुम जानती नही कि यह हसी का नही मृत्युवेदना झेलने का क्षण है।'—कंस कुछ आहत हो उठे थे।

'युवराज !——मानसी सहसा गम्भीर हो उठी। उसने स्वर को इस तरह गति दी जैसे उसमें बिजली भरी हो। शरीर के हर रोम को दहलाती हुई—'क्षत्रियत्व का दंभ, कभी-कभी कितना मूर्खतापूर्ण हो सकता है—यह सुनकर मैं ही क्या, कोई भी साधारण बुद्धि व्यक्ति हंस ही सकता है !'

युवराज चुप हो गये।

मानसी इठलाती हुई उठी, बोली—'होना तो यह चाहिए कि समयानुसार यादव गणसघ, मगधराज से मैत्री-सम्बन्ध बनाकर अपना और जन-जन का शुभ करे !—इससे एक नही, बहुविधि लाभ होगे कुमार''' ! मगधराज की वरद किसी और सत्तालोलुप दृष्टि को यादव गणसघ की ओर दृष्टि उठाने का साहस भी नही करने देगा। सुरक्षा तो रहेगी ही।'

'पर यह सब कुछ वे मानें—तभी तो !' युवराज कंस ने व्याकुल स्वर में कहा—कुछ और कहें, मानसी बोल पड़ी थी—'आप भी युवराज हैं मथुरा के। आपके भी समर्थक होगे। बहुत नही तो कुछ तो निश्चय ही होगे। उन्हें साथ लेकर ऐसे लोगों का विरोध कीजिए जो कालचक्र की गति नही पहचान पा रहे है !—'

उत्तर नहीं दिया था कंस ने। केवल गहरा श्वांस लिया। कक्ष के बाहर खिड़की के पार दूर तुरन्त देखने लगे।

'अब मुझे आज्ञा दें, युवराज !—आज शरीर कुछ अस्वस्थता अनुभव कर रहा है। मानसी ने पीछे से स्वर उछाला।

कंस बोले थे—'हां, तुम विश्राम करो, देवी !—'

मानसी ने प्रणाम किया। बाहर निकल गयी।



मानसी के शब्द अब भी कक्ष में हर दीवार पर जड़े—गूंजते अनुभव हो रहे हैं—यही कुछ अनुभव किया था युवराज ने—

'—क्षत्रियत्व का दंभ, कभी-कभी कितना मूर्खतापूर्ण हो सकता है—यह सुनकर मैं भी क्या, कोई भी साधारण बुद्धिव्यक्ति हंस ही सकता है—!'

'निश्चय ही—!' कंस बड़बड़ा उठे थे—'तुमने असत्य नहीं कहा है मानसी ! निश्चय ही क्षत्रिय-दंभ केवल मूर्खता है !'

'मदमत्त गजराज के सामने सम्पूर्ण वीरत्व भी अर्थहीन हो जाता है कुमार !—' मानसी ने यह भी तो कहा था—और राजकुमार कंस जान रहे हैं कि यह उसके पिता का थोथा अहं ही है कि वह चारों ओर से घिरने के बाद भी जरासन्ध की अजस्र-असहनीय शक्ति को अस्वीकारे रहना चाहते हैं—!'

युवराज कंस को लग रहा था कि माथे से लेकर तलवों तक की हर नस पिता के दब्बू स्वभाव ने जकड़न से भर दी है। पल-पल शब्द कानों में तिरते हुए। उग्रसेन बोले थे—'—यादव जाति के अन्धक, वृष्णि और भोजों ने यदि मथुरा पर यह विश्वास छोड़ा है, तब हमें उस विश्वास को उसी गणतन्त्रीय पद्धति से सम्हालना होगा—

'उंह—!' चलते-चलते कंस के भीतर से एक धिक्कार उठा था फिर होठों से वह निकला। लगा था कि राजगौरव मोम की तरह रिसकर बहने लगा है—ऊबड़;खाबड़, विद्रूप होता हुआ। भला इस तरह राज्यचालन होता है ? फिर कंस के पिता उग्रसेन यों ही तो यादव गणसंघ के प्रमुख नहीं हुए हैं। भोजवंशी यादवों के पास अन्धकों और वृष्णिवंशियों से अधिक शक्ति है, इसलिए वे सब उनके सत्ताधीन हैं। उनसे सम्मति लेने का अर्थ है, अपनी शक्ति और सत्ता को अपमानित करना—

कंस स्वयं भोजराज होते तो ऐसा कभी न करते। जो समयानुकूल उचित दीखता, वह निर्णय कर लेते। वह निर्णय—वृष्णिवंशी हो या अंधक सभी को स्वीकारना पड़ता न स्वीकारते, तो स्वीकार करवा दिया जाता। ...ऐसा ही तो राज्य है। वही राजस—!

लगा था कि उग्रसेन वृद्ध ही नही, शक्ति और आत्मविश्वास से हीन हो चुके हैं। क्यो न होंगे? इतनी आयु हो चुकी—अब भी राजा बने रहने के योग्य अपने को मानते हैं। तब क्या कस प्रौढ़ायु मे राजा बनेंगे?…तब जब राजभोग, शक्ति-उपासना का तेज बह चुकेगा?

ऐसा पहली बार ही कस को लगा हो—नही है। उग्रसेन के बहुविधि निर्णय, बातचीत, स्वर यहा तक कि दृष्टि भी थकी जान पडती है। किसी भी पल कंस अनुभव नही कर पाते कि वे केवल राजा ही नही भोजपति हैं!…विशाल यादव गणसंघ की सर्वोच्च निर्णायक शक्ति…!

पर कुछ किया भी तो नही जा सकता। मथुराधिपति उग्रसेन के पुत्र हैं कस। युवराज भी। एक सीमा से आगे बढ़कर न तो बोल सकते हैं, न ही तर्कातर्क करने की स्वीकृति है उन्हे।

क्या सदा ऐसी ही स्थिति में रहेंगे कंस? उनके अपने भीतर एक विचार कुलबुलाने लगा था। विचार, जिसने उन्हें जितना डराया, उतना ही चिन्ताग्रस्त किया। बुदबुदाकर अपने से ही कह उठे थे… 'नहीं'…! यह नहीं होगा? बूढ़े, कृशकाय उग्रसेन ने यदि लम्बी आयु पा ली है तो इसका अर्थ यह कदापि नही कि उनकी इस आयु के राजस पर कंस का यौवन गल जाये। बलिदान हो जाये! …कंस कदापि ऐसा नही होने देंगे।

तब क्या करेंगे कस…? क्या पिता की अवहेलना करेंगे? उनसे विद्रोह? और ऐसा करने का परिणाम जानते है वह?…यादव गणसंघ में अति-सम्मानित हैं उग्रसेन। कंस युवराज भले ही हों, किन्तु उनकी किसी भी वाचलता, विद्रोह या उद्दंडता की चेष्टा को वृष्णि-अन्धक वशी यादव राजा कभी नही सहेंगे। उनकी एकत्र शक्ति इतनी तो है ही कि वे न केवल कस को कुचल डालें, अपितु उनकी हत्या तक कर दें।

तब स्पष्ट है. कंस ऐसा कभी नही कर सकेंगे …! कंस मुडे, व्यग्र मन उद्यान की ओर चल पडे। मन व्यग्र ही नही, व्याकुल हो उठा है…शूरसेन जनपद के विशाल क्षेत्रों में राज्य कर रहे यादवों का चेहरा रह-रह कर उभरता है…सत्यक, श्वफलक, वसुदेव, सयोजित, शूरसेन आदि…बारह वनक्षेत्रों की बारह यादव सत्ताएँ…! ये सभी उग्रसेन को केवल अपना नेतृत्व नही सौंपे हुए हैं, उस पर श्रद्धा करती हैं। इस श्रद्धा को चाहे अपना

चोट पहुंचाए, चाहे बेगाना—वे उसे समाप्त करते तनिक संकोच नहीं करेंगी।

कंस ने अनुभव किया था कि एक सनसनी ही नहीं, भय को लकीर मन को चीरती चली जा रही है···लगा था कि चलते-चलते कुछ लड़खड़ाहट उभर आयी है पांवों में। जैसे-तैसे राजभवन का लम्बा मार्ग पार किया था ···निवास पर जा पहुंचे।

मानसी उनकी प्रतीक्षा कर रही होगी। सुन्दर, गौरवर्णा, सरल मानसी' आखेट करते समय अनायास ही भेंट हो गयी थी मानसी से। बातचीत में पता चला था कि गन्धर्वकन्या है। कंस उसे अपने साथ ले आए थे। गुप्त रूप से अपने निवास में रख लिया था। निवास के उस कक्ष में प्रवेशद्वार पर अपने विश्वस्त अनुचर लगा रखे थे—डिम्भक और चित्रसेन।



किन्तु कंस को कुछ-न-कुछ करना होगा···! मन में विचार कौंधा था। फिर मानसी की प्रेरणा याद आयी थी—'···आप भी युवराज हैं मथुरा के। आपके भी समर्थक होंगे, बहुत नहीं—तो कुछ तो होंगे।···ऐसे लोगों का विरोध कीजिए, जो कालचक्र की गति नहीं पहचान पा रहे हैं!'

कंस यह कर सकते हैं···! उन्होंने अपने समर्थकों को अजाने ही स्मरण करना प्रारम्भ कर दिया था···अन्धक, वृष्णि और भोजों में उनके समर्थक ···लगा था कि खोजना पड़ रहा है—यही नहीं कर पा रहे हैं···इक्का-दुक्का नाम ही है—बस!

तब···?

तब असम्भव है। महाराज उग्रसेन का निर्णय ही सर्वोपरि होगा।

और उस निर्णय का अर्थ है—नाश!···अभी से पूरी तरह जान रहे हैं कंस। वे सब जरासन्ध की आधीनता स्वीकार करने के बजाय युद्ध करके मर जाना ही श्रेष्ठ समझेंगे और युद्ध का अर्थ होगा—कंस का युवराज

रहते ही अन्त !···विशाल शूरसेन जनपद[1] की एकछत्र सत्ता मथुरा उनकी मुट्ठी में आकर भी फिसल जायेगी।

नहीं···नहीं···! ऐसा समय नहीं आने देंगे युवराज कंस···! यदि मृत्यु ही निश्चित है, तब सम्पूर्ण विरोध करके कालगति के साथ जीने की चेष्टा करेंगे वह ! पर कैसे···?

विचार करना होगा। पर उससे पूर्व गणसंघ के यादव-प्रमुखों की सभा को देखेंगे कंस। अपनी सम्मति भी व्यक्त करेंगे। हो सकता है कि जिस आशंका को मन में पाले हुए व्यग्र हो रहे हैं—उनको तरह और विचारनेवाले भी निकल आयें···?

एक पल के लिए लगा था कि मस्तिष्क की एक विचारतरंग ने मन हल्का कर दिया है। हवा के झोंके मीठे लगे—शीतल भी। कंस निश्चिन्त भाव से उठे और शयन-कक्ष की ओर चल पड़े।

---

१. शूरसेन जनपद : शूरसेना के जनपद में आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने पांच स्थल : क्रमशः अक्कस्थल, वीरधसम्, मृदु वर्ण, पऊमस्थल, और रहास्थल बतलाये हैं। उन्हीं के अनुसार यहां बारह वन थे। ये थे···लोहजंघवर्ण, खदरवर्ण, काम्रिअवर्ण, मृदु वर्ण बिल्लवर्ण, कोलवर्ण, तालवर्ण, विदावर्ण, भंडीरवर्ण, बहुलावर्ण महावर्ण, कमुअवर्ण। इन सभी को चतुरसेन जी ने तीर्थ-कल्प कहा है। जबकि 'सूरसागर' की 'अखिल भारतीय विक्रम परिषद् काशी' द्वारा प्रकाशित टीका व ग्रन्थ में व्रज के १२ वन इस प्रकार हैं···महा, काम्य, कोकिल, ताल, कुमुद, भार-भाण्डीर, जव, खदिर, लोहज, भद, बहुल और बिल्व। वृन्दावन इन १२ अधिवनों में से एक कहा गया है। सम्भवतः विदावर्ण ही वृन्दावन है।

मानसी जानती है—जैसा उससे कहा गया था, वैसा ही चल रहा है। सन्तुष्ट भी होना चाहिये उसे। वह मगधराज की श्रेष्ठतम सेविका साबित होगी। निश्चय ही उसे कार्य समाप्त होने पर असाधारण पुरस्कारों से सम्मानित किया जायेगा। स्वर्ण, रत्नादि के अतिरिक्त सारा जीवन भोग-विलास और आनन्द से सराबोर होकर कटेगा···उसे अपनी इस अभूतपूर्व सफलता पर प्रसन्न होना चाहिए! एकांतों में मन के भीतर दबी पड़ी खिल-खिलाटों के साथ खुलकर हंसना चाहिए···।

पर अजीब बात है—वैसा हो नहीं पाता! सब कुछ जानते, अनुभव करते हुए वैसा नहीं कर पाती मानसी।

क्यों···?

इस 'क्यों' का उत्तर बहुत बार उसने अपने भीतर खोजने की चेष्टा की है, पर मिलता नहीं। बस, इतना ही लगता है कि यह सफलता; बहुतों के साथ विश्वासघात से भरी हुई है। विशेषकर युवराज कंस और उनकी—जन्मभूमि के विरुद्ध विश्वासघात! कितनी बार मन की इस पीड़ा को उसने अपने ही भीतर तर्क जनमकर घोंट लेना चाहा है—व्यर्थ की बातों पर विचार करती है मानसी। भला गुप्तचर का धर्म, संवेदना, भावना, कर्त्तव्य उसकी अपनी धरती से विलग कुछ होते हैं···? नहीं! उसके लिए तो सब कुछ मगध है मगध के महाराज जरासन्ध के आदेश हैं। मगध की वह धरती है, जिसके लिए मानसी ने स्वयं का कुमारीत्व अर्पित कर दिया है। इस सीमा तक कि वह केवल विलास वस्तु बनकर रह गयी है···? कंस की अंकशायिनी। उसकी प्रिया! उसकी सर्वस्व! विश्वास से लेकर बुद्धि तक!

पर मानसी ही है, जो अपने से हर बार असहमत हुई है···झूठ ··। उसने मातृसेवा या मगध की भूमि के प्रति कोई धर्म नही निबाहा, अपितु अपने आपको एक सत्तालोलुप, शक्ति के पुजारी ऐसे सम्राट की राजनीति का मोहरा बना लिया है, जिसके लिए मगध का गौरव या मनुष्यता का संवेदन महत्वपूर्ण नही है—जिसका लक्ष्य है केवल शक्ति और सत्ता का विस्तार ! अभूतपूर्व और अमानवीय गौरव जुटाना। आतंक और भय बिखराकर सम्राट कहलाने का दभ जुटाना···। यही कुछ तो है जरासन्ध ! और यही कुछ रह गयी है मगध की राजनीति !

पहले इतना कुछ तो न जानती थी मानसी, न ही समझती थी। वह मात्र यही जानती पहचानती थी कि वह मगध देश की सेवासमर्पिता होकर जा रही है। एक तरह से मथुरा की स्वतन्त्र सत्ता की बुनियाद खोखली करके मानसी मगध की सेवा करेगी—!' उन्मत्त राजकुमार कंस के भीतर जड़ी-जकड़ी हुई राजभोग की लालसाओं को उभारेगी—इस उभार से मगध लाभान्वित होगा—। मथुरा मगध के अन्तर्गत आकर एक साधारण राज्य रह जायेगा—अस्तित्ववान होते हुए भी अस्तित्वहीन—!

यही कुछ सोचकर चली थी मगध से। गुप्तचरी नया-नया और बहुत रोमांचक अनुभव था सुन्दरी मानसी के लिए—। उसने सम्पूर्ण एकचित्तता से वही सब कुछ किया था ! उस समय यह सब करने की चाह और अधिक बढ गई थी, जब कंस ने अपने सहज रसिकहीन व्यक्तित्व से उसके सुगठित सौंदर्य और अप्सरावत आकर्षण की ओर अनदेखा कर केवल व्यक्ति-धर्म निबाहा—!' राह में जो मिली थी मानसी ! घायल, असमर्थ और एक दुर्घटना की शिकार रोगिणी—! कंस ने उसके प्रति वही व्यवहार किया था !

मानसी को वह सब अच्छा नही लगा। कंस के प्रति अनायास ही सही विद्रोह और प्रतिशोध से भर उठी थी वह। भला समझता क्या है अपने आपको—? स्त्री और सुन्दर स्त्री का अपमान करके वह सम्पूर्ण जाति का ही अपमान कर रहा है ! मानसी उसे ऐसी राह लगायेगी कि वह उसका दास होकर रह जायेगा ! मन, शरीर, इच्छा और यहां तक कि बुद्धि से भी दास—!

भूल गयी थी मानसी कि वह किसी और काम के लिए आई है। उस क्षण तो उसे केवल यही स्मरण रहा था कि किसी भी तरह हो—मानसी को रुखे, शुष्क, उदासीन कंस के पौरुष को झकझोर डालना है! हुचमचाकर जतला देना है कि स्त्री यदि चाहे तो पुरुष एक भिक्षुक की तरह दासभाव से उसके सामने खड़ा रह जाता है—!

जतला दिया था कि वह शुष्क, रसिकहीन व्यक्ति है—स्त्रियों में उसकी कोई विशेष रुचि नहीं है···।

पर यह कहाँ जानती थी मानसी कि वह इस कदर काला, अन्धेरा, प्रकाशहीन और खाली कूप भर है—! आश्चर्य हुआ था उसे—फिर चिढ़ आयी थी—और उसके जबड़े कस गये थे। निश्चय कर लिया था—। "कंस—! देखती हूं तुम्हारे भीतर यह रेगिस्तान कब तक ठहर पाता है—? तुम बहोगे! इतना बहोगे कि अपनी ही लहरों पर बेकाबू होकर ओर-छोर भी भूल जाओगे!

कंस के कक्ष से विदा लेकर अपने भव्य, सजे-संवरे निवास-गृह में आयी, तो पलंग पर लेटकर अनजाने ही अपने विगत से जुड़ गयी थी···।

वह दिन जब उसने कंस की शुष्कता को केवल रसकुण्ड बनाने का निर्णय लिया था···।

नहीं चाहा था कि वह दिन याद करे। विगत की उन घड़ियों को माथे में जीवित रहने दे, पर कभी-कभार मन के भीतर ऐसे ही उबल आया करता था विगत...आज भी उबल आया था—।

मानसी ने रेशमी तकिये पर सिर डाला और एक हल्की करवट लेकर पलकें मूंद लीं—विगत-चित्र उभरने लगे थे।



उस दिन रथ में ८ योजन का मार्ग, उस तरह पलकें मूंदे हुए तय करते समय मानसी को बहुत कष्ट हुआ था। वह युवराज के रथ में थी। युवराज ने अपने ही समीप उसके शरीर को बिखरे रहने के लिए जगह बनादी थी··· रथ के हिचकोले लगने और रह-रह कर मानसी के शरीर-अंग युवराज की गठीली देह से छू जाते···मानसी को अनुभव होता कि उसके बदन में असंख्य बिजलियाँ कौंधने लगी हैं। उत्तेजना और सकुचाहट को एक साथ बटोरे

हुए'''।

किन्तु कंस बेखबर। कहीं खोये हुए। मानसी उनके लिए एक जड़ वस्तु से अधिक नहीं थी। यों भी उसे घायल और बेसुध जो पाया था उन्होंने। उसके प्रति एक राहगीर का कर्त्तव्य निबाहने के अतिरिक्त और कोई चाह नहीं।

राह कट गयी थी। युवराज समूचे मार्ग में चुप रहे थे। यह कम बोलना उनका स्वभाव था या किसी अन्य विचार में मग्न थे—मानसी तय नहीं कर सकी थी, बस इतना जाना था उसने कि युवराज कंस के भीतर संवेदन पैदा करना ऐसा ही होगा जैसे किसी चट्टान के स्रोत निकालने की दुष्क्रिया की जाये।

इस विचार ने मानसी को मन ही मन कुछ सहमा दिया था'''पर अब हो भी क्या सकता था? केवल यह कि मानसी अपनी ओर से भरपूर चेष्टा करेगी। असफलता की कल्पना ने भी कम नहीं डराया था उसे। जरासन्ध का क्रोध जाना-समझा था'''वह जन्मतः भले ही राजरक्त से हो—किन्तु संस्कार उसमें उस राक्षसी माता के थे जिसने उसे जीवनदान दिया था''' वह एक लम्बी, पर विस्मित कर देने वाली अलग कहानी'''

मानसी चेष्टा करेगी'''भरपूर चेष्टा करेगी कि जिस लिए आई है, उस काम को निबाहे'''

सहसा रथ थम गया था। युवराज का स्वर सुना था उसने। कसा-गसा, संक्षिप्त और विस्फोटक जैसा, 'सारथी'''! रथ चिकित्सा-केन्द्र पर ही रोका है ना?"

'हां, युवराज'''!' एक थरथराता स्वर आया।

फिर युवराज ने कुछ नहीं कहा था'''।

☐

मानसी ने कुछ पदचापें सुनी थीं, फिर अपने आपको अनेक हाथों पर अधर उठते हुए अनुभव किया। इस चेष्टा में अजाने ही ये हाथ मानसी के उत्तेजक अंगों को छू रहे थे—एक कसमसाहट अनुभव की थी उसने'''बस चुप साधे रही।

कुछ समय बाद उन हाथों ने मानसी को किसी गुदगुदे आसन पर लिटा

दिया था। अजाने ही एक भरा, निश्चिन्त श्वास बाहर आया था मानसी के अन्तर से। लक्ष्य का एक चरण और पूरा हुआ।

फिर मानसी का उपचारारम्भ हुआ था···बड़ी दक्षता के साथ कुछ समय बाद उसने सुधि में आने का अभिनय किया था···देखा—एक प्रौढ़ा महिला सामने थी। आंखों में स्नेह, स्वर में प्रेमलता—'कैसी हो अब ?'

"हूं...? प्पर ··मैं—हूं कहां ?" मानसी ने अभिनय जारी रखा।

"तुम मथुरा में हो।"

"मथुरा ?"

"हां···।"

मानसी ने थूक का घूंट निगला, पर मैं···मैं यहां आयी कैसे ?'

'युवराज कंस ने आखेट से लौटते समय तुम्हारे रथ को क्षतिग्रस्त पड़े पाया था और तुम बेसुध पड़ी हुई थी···।"

'ओह···'। मानसी ने पुनः आंखें मूंद ली थी—ऐसे जैसे शरीर वेदना से टूटा आ रहा हो। एक गहरा श्वांस लिया था। होठों पर जीभ फिराई।

'अब तुम पूर्ण स्वस्थ हो।' महिला ने कहा था—'युवराज को तुम्हारे सुधि में आने की सूचना दे दी जायेगी।"

'और···और वह कहां है ? 'मानसी ने पलकें पुनः खोलीं।

'वह—? वह कौन ?'

'वही जो मेरा हरण कर लिये जा रहा था···।'

'हरण ? 'प्रौढ़ा चौंकी। माथे पर सलवटें उभरीं। उससे कहीं अधिक व्यग्र चिन्ता। दृष्टि में कौतूहल, पूछा, 'कौन कर रहा था तुम्हारा हरण ?'

'मैं—गन्धर्वकन्या हूं—मानसी···।' मानसी ने पूर्वायोजित झूठ कहा था, 'वह दुष्ट असुर मेरा हरण करके वायुवेग से मुझे इस ओर लिये आ रहा था···मैं नहीं जानती थी कि वह कौन है ? क्या नाम है उसका ?'

सब कुछ इस मासूमियत और सहजता के साथ कहा गया था, कि वह प्रौढ़ा चिकित्सका मानसी के प्रति भावुक हो उठी—'ओह···'। 'सहसा उसने प्रसन्न होते हुए कहा—'यह सब तो अच्छा ही हुआ। संभवतः तुम्हारे रथ के क्षतिग्रस्त हो जाने पर वह दुष्ट भाग खड़ा हुआ होगा···उसी बीच युवराज उधर से आ निकले···। तुम भाग्यशाली हो युवती !'

मानसी शान्त रही—पलकें पुन: मूंद लीं। इसी बीच चिकित्सालय का अन्य सेवक उपस्थित हुआ, 'सूचना पहुंच गई है देवी'''। युवराज ने कहा है कि कुछ समय बाद जब इन्हें सम्पूर्ण स्वास्थ्यलाभ हो जाये, तब उनके समक्ष उपस्थित किया जाये।'

मानसी ने सुना—गहरा धक्का अनुभव हुआ था उसे। सचमुच बड़ा ही पथरीला आदमी है ये कंस'''। उसने अपने ही द्वारा बचायी गई युवती को देखने आना तक उपयुक्त नहीं समझा। जी हुआ कि खीझकर कह दे —'तुम्हारे राज्य का राजकुमार मनुष्य है या शिला?' पर चुप रही। यह सब कहा नहीं जा सकता था।

'अब तुम विश्राम करो'''। सम्भवतः कल ही तुम सहज हो जाओगी, फिर युवराज से समय लेकर उनकी सेवा में तुम्हें उपस्थित किया जायेगा।' चिकित्सका बोली और लौट गई।

मानसी को पुनः अज्ञात डर ने घेर लिया'''हे भगवान'''। पल-पल प्रकट हो रहा था कि युवराज कंस बहुत ही शुष्क व्यक्ति है। कर्त्तव्य के नाम पर भी केवल यन्त्र'''। उसे किस तरह संवेदन-जाल में उलझा सकेगी वह'''?



जिस क्षण मानसी को मधुपुरी[1] स्थित कंस के निवास पर ले जाया जा रहा था, उस समय वह अपने आपको बहुत सहज रखने के प्रयत्न में भी रह-रहकर असहज होने लगती थी'''कंस! चिकित्सालय में ऊबते हुए हर क्षण में उसने कंस की एक कल्पना मूर्ति बना रखी थी—आशंका और भय से भरी हुई'''।

कैसा होगा कंस? स्वर से कुछ-कुछ अनुमान किया था। बहुत रोबदार दबंग, कठोर और उबाऊ। स्पर्श की उस जकड़ ने शक्ति का अनुमान करा

---

1. मधुपुरी : सूरदास कृत सूरसागर में मथुरा को मायापुरी कहा गया है। 'महाभारत' में कंस को मथुराधिपति बतलाया गया है। अत: यह विवादास्पद है कि वर्तमान मथुरा का तत्कालीन नाम मथुरा ही था, या मधुपुरी था। मथुरा की सम्पूर्ण भौगोलिक स्थिति का जो वर्णन मिलता है, उसके अनुसार वर्तमान मथुरा नगर ही तत्कालीन मथुरा या मधुपुरी था।

दिया था। यादव श्रेष्ठ कंस शरीर शक्ति और पौरुष के मामले में भी अद्वितीय ही हैं।

हर कदम के साथ कोई न कोई प्रश्न उठता, माथे की नसों से टकराता, एक कौंधन-सी पैदा हो जाती—मन शरीर में! क्या पूछेंगे वह···? और क्या उस तरह विश्वास करने वाला स्वभाव होगा युवराज का, जिस तरह चिकित्सिका ने उसके अभिनय और शब्दों को मान लिया था।···

उंहुं···। मन कहता था—वह राजनीतिज्ञ है। पल-प्रतिपल झूठ, और सच को जांचते-परखते रहना ही उनका व्यवसाय। ऐसे आदमी को साधारण अभिनय से प्रभावित नहीं किया जा सकेगा!

यह भी हो सकता है कि वह उस कल्पना-गढ़ित असुर की खोज ही करवाने लगे, जिसके द्वारा हरण किए जाने की बात मानसी ने कही थी···?

पर लगा था—व्यर्थ है···। बिना कंस को देखे, समझे, उससे सामना किये हुए आशंकाओं के दलदल में मन को डुबोये जाना मूर्खता है!··· मानसी पहले कंस को देखेगी, एक क्षण में समझेगी, फिर स्थिति के अनुसार तुरंत ही संवाद और अभिनय के साथ उसके हर प्रश्न या जिज्ञासा का समाधान कर देगी।

यही ठीक था। यही ठीक हो भी सकता था। शेष सोचना-समझना व्यर्थ! मानसी ने स्वयं को आश्वस्त किया—शरीर का बिखराव सहेजा, बढ़ चली।

कुछ पल बाद ही मानसी, कंस के सामने थी। दृष्टि उठाकर युवराज को देखने के लिए भी साहस जुटाना पड़ा था उसे। धकड़ते हृदय से उसने उन्हें देखा था। उनके गिर्द का वातावरण।

स्वर्णजटित एक सुन्दर आसन पर बैठे हुए थे वह। माथे पर रत्न-जटित मुकुट। आंखें कुछ लालिमा से भरी हुई। शरीर सुपुष्ट। लगता था कि द्वंद्वयुद्ध के आदी थे वह। जबड़े अजब से कसाव से भरे हुए। भारी-भारी मूंछें। चौड़ा वक्षस्थल—हर कपड़ा रेशमी। उनकी कलाइयों में भी स्वर्ण के कड़े थे।

'तुम्हारे बारे में सब कुछ सुनने-जानने को मिला है सुन्दरी···!' वह बोले थे—'इसे ईश्वर की कृपा समझो कि उस क्षण हमारा रथ उस ओर से आ

निकला, अन्यथा उस निपट वन-बीहड़ में तुम किसी वनपशु का आहार भी बन सकती थी…!' उन्होंने बात प्रारम्भ की थी।

'मैं—मैं आपकी आभारी हूं, महाराज !' मानसी ने बहुत चाहा था कि स्वर न कांपे, किन्तु कांप गया। डरी भी थी—कहीं सन्दिग्ध न हो उठे युवराज, पर मन ने तुरन्त दिलासा दिया—'नहीं, तुम्हारा प्रथम बार युवराज के सामने बोलना इतना ही अस्वभाविक हो सकता है…! यह सहज ! घबराहट थम गयी।

कंस अपने आसन से उठे—'तुम्हें स्वस्थ देखकर प्रसन्नता हुई है सुन्दरी…! चिकित्सका ने बतलाया कि तुम गन्धर्व कन्या हो ?'

'हां, देव !' सिर झुका दिया था मानसी ने। यही उचित होगा। युवराज से दृष्टि न मिलाकर सहज रह सकेगी वह।

'हूं…' वह सिर्फ गुरगुराये। चहलकदमी करने लगे, फिर बोले—'तुम सुन्दर हो, आकर्षणमयी हो…तुम्हें इस तरह असुरक्षित स्थिति में उस असुर के सामने नहीं आना चाहिये था…।'

'मैं अपनी माता के साथ ही थी देव, किन्तु उस दुष्ट ने मेरी माता का वध कर दिया और फिर बलात् मेरा अपहरण…' कहते-कहते मानसी का स्वर भर्राया।

'शान्त हो…' कंस ने कहा, 'सुनकर हमें दु:ख हुआ है।'

मानसी शान्त होने-न-होने की चेष्टा का अभिनय करती रही—पर सिर झुका हुआ। बदन ज्यों का त्यों कम्पन करता हुआ।

'अब तुम किस स्थान पर जाना चाहोगी ?' युवराज ने उसकी ओर पीठ फेर ली थी—प्रश्न इतना सपाट था, जैसे मन से नहीं, केवल गले से बाहर आया हो। नितान्त रूखा।

मानसी आहत हुई। बिलकुल ही मरुथल है यह व्यक्ति…! उफ् ! इसे जीतना होगा। मानसी को अपने बारे में विश्वास ही नहीं आश्वस्ति है—वह सुन्दरी ही नहीं, लावण्यमयी और अद्भुत आकर्षण, शरीर-सौष्ठव से पूर्ण है ''और युवराज उसकी ओर से पीठ करके खड़े हो गये हैं। मन ने बहुत अपमानित किया स्वयं को। चुप रही।

'बोलो, सुन्दरी···?' कंस ने कहा—'तुम जहां भी जाना चाहोगी, तुम्हें वहा सुरक्षित रूप से भेजे जाने की व्यवस्था कर दी जायेगी !'

मानसी इस बीच सोच रही थी कि क्या करे···सोच भी चुकी। सहसा वह हिचकियां भर-भर कर रोने लगी थी···इतनी जोर से कि युवराज कंस ने चौंककर उसे देखा। एकदम पूछा, क्या हुआ गन्धर्वकन्या ?'

पर मानसी एकदम बोली नहीं—सिर्फ रोयी, बहुत स्वाभाविक, बहुत सहज।

'अब···अब क्या उलझन है सुन्दरी···?'

'मैं—मैं असहाय हूं, युवराज !···अब कहां जा सकती हूं···? पितृ रहे नहीं। माता उस दुष्ट के हाथ समाप्त हो चुकी और मैं हतभागिनी ···वह फिर रोने लगी···

कंस परेशान-से उसे देखते रहे···मानसी ने एक बार चोरदृष्टि से उन्हें देखा—मन आश्वस्त हुआ। कंस पर प्रभाव हो रहा है···पर उसे इतना प्रभावित होना चाहिये कि वह उसे वहीं रखने के लिए तैयार हो जाये···

'तब, तब तो तुम्हें भी निश्चय करना होगा कि तुम क्या चाहती हो ?' युवराज बोले—'डरो मत···तुम जैसा भी चाहोगी, वैसी व्यवस्था कर दी जायेगी !'

'आप···आप ही मेरे प्राण दाता हैं, प्रभु···! मुझे अपने ही चरणों में ले लीजिए। यह जीवन आपका ही दिया हुआ है। मैं—मैं आपकी सेवा करके ही प्रसन्न रह लूंगी···! समझूंगी—यही मैंने भाग्योपलब्धि की !'

'यह···यह क्या कहती हो, गन्धर्व कन्या ?...' कंस ने उत्तर दिया। स्वर सहसा असहज हो गया था—'मैं अपने निवास पर युवतियों या स्त्रियों को नहीं रखता। यह तभी संभव है, जब कि यहां युवरानी होती···मैं—मैं इसे उचित नहीं समझता !'

'पर मनुष्य तो स्त्री भी होती है देव···!' अनायास ही वह कह गयी थी।

'मैं तुमसे तर्कशास्त्र सीखने नहीं बैठा हूं।' कंस का स्वर अनायास ही कठोर भर नहीं, कटु हो गया था—'यह नहीं हो सकता।···'

'किन्तु युवराज मैं दुखियारी···अब अनाश्रित हूं···' मानसी ने तुरन्त आंसू जुड़ाये—बहाने लगी।

कंस कुछ देर सोचते रहे। पर मानसी बहुत कुड़ी। युवराज पुनः उनकी ओर से पीठ मोड़ चुके थे। कुछ क्षण बाद कहा था उन्होंने—'तुम्हारे लिए क्या किया जाये, यह विचार करूंगा।···इस समय तुम यहां से जा सकती हो···।'

मानसी सहसा झुकी, युवराज के पैरों मे गिर पड़ी—'देव···! मुझ पर कृपा करें मैं कहां जाऊंगी···? अब तो मैं गन्धर्व समाज मे भी स्वीकार्य नही रही। अकलंकित होते हुए भी मुझे···सब दोषी ही ठहरायेंगे। मुझे अपनी ही सेवा में···।'

सहसा कंस ने चरण पीछे खींच लिए थे। बोला था—'गन्धर्व कन्या! ···बहुत हुआ मैं तुम्हें बतला चुका हू कि युवतियों को सेवा में रखने में मुझे तनिक भी रुचि नही है। मैं छल को अपने समीप नही रखता···।' सहसा उनका तेज स्वर कौंधा था—'चित्रसेन!'

मानसी ने लेटे-लेटे ही देखा—एक कठोर सेवक उपस्थित हुआ।

'इस गन्धर्व कन्या को ले जाओ। किसी अच्छे स्थान पर इसके लिए निवास-व्यवस्था कर दो बाद में मैं विचार करूंगा कि इसे क्या काम दिया जाये?'

'जो आज्ञा, युवराज!' चित्रसेन धरती पर बिखरी पड़ी मानसी के पास आ खड़ा हुआ था।

मानसी ने जबड़े कसे, अपमान से अंगार की तरह झुलसती-सुलगती हुई उठ पड़ी। कंस ने उसकी ओर देखा तक नही था। वह चित्रसेन के पीछे-पीछे चल पड़ी।



केवल अरसिक भर नहीं—स्त्री के प्रति घोर वितृष्णा से भरा हुआ पशु···। मानसी ने यही कुछ समझा-देखा था कंस को! एक-एक हरकत उसे याद आयी थी···मानसी को ओर अनदेखा करना, पीठ मोड़ना, कभी-कभी मिली दृष्टि में पथरीली खुरदुराहट से देखना, अजब-सी उपेक्षा और तिरस्कार का भाव···।

उस क्षण किस तरह अपमानित किया था मानसी को,
पैरों पर जा गिरी थी···? नीच!

मानसी के भीतर कंस के प्रति अनम आयी वितृष्णा सहसा ही गालियों से भर उठी थी। पौरुष और राजदंभ में डूबे हुए दुष्ट ···। एक-न-एक दिन यही मानसी तुझे अपने तलवों पर सिर रखवायेगी···। अब प्रश्न मगध की राजनीति, गुप्तचरी अथवा जरासन्ध के निर्देशों का नहीं था—अब प्रश्न था मानसी के अपने अपमान का! यह मानसी का नहीं उसके स्त्रीत्व, सौन्दर्य, आकर्षण और समर्पण की अवहेलना थी! केवल अवहेलना नहीं—कंस ने थूक दिया था उस पर!

इस थूक को तुझे एक दिन माथे लगाना होगा दुरभिमानी कंस···। मानसी ने अपने से ही बड़बड़ाकर कहा था। वह जैसे पागल हो उठी थी। *याद आये थे मगध के वे दिन। जिस क्षण मंच पर उतरती थी मानसी।* अभिनय को अपने जीवतता से भरती थी। मगध की हर आयु के पुरुष उसके लिए पागल हो उठते थे! यहां तक कि अनेक बार बड़े-बड़े सामन्तों तक ने उससे प्रेमयाचना की थी। मानसी ने उन्हें ठुकरा दिया था, किन्तु उसी मानसी को कंस ने केवल ठुकराया नहीं—उसके समूचे गौरव को ठोकर मारकर भरे नाले में उछाल दिया!

मानसी यह नहीं सहेगी···। कोई भी सौन्दर्याभिमानी नारी यह नहीं सह सकती। कंस तुझे भोगना होगा सब कुछ! बहुत कुछ भोगना होगा···। तेरी इस मथुरा को भोगना होगा···। मानसी तुझे जीवन भर के लिए मानसिक रूप से अपंग बना छोड़ेगी! विलास के उस नर्क में डुबो देगी, जिसमें कदम रखते ही बड़े-बड़े वैभवशाली राजा ही नहीं सम्राट ही नहीं सत्ताएं लुप्त हो गयी हैं···! पृथ्वी की अतल गहराइयों में डूब चुकी हैं। अवशेष रूप में बचे हैं खंडहर ···।

मानसी तुझे खंडहर बना डालेगी···।

सो नहीं सकी थी सारी रात। मन शरीर, सोच सभी कुछ अस्तव्यस्त हो गये थे! कई-कई जगह से लहू-लुहान···। अपमान के घाव ऐसे ही होते हैं···। शरीर के घावों में मृत्यु भय होता है—अपमान के घावों में प्रतिक्षण मृत्यु अनुभव की जाती है—मृत नहीं हुआ जाता।

मानसी उन दुर्योजनाओं का जाल बुनने लगी थी जो कंस को मानसी का दास बना छोड़ें।



गणिका नहीं थी यह। केवल अभिनेत्री थी मगध के कलाप्रेमियों के बीच नृत्याभिनय, भावाभिनय करना ही उसका व्यवसाय था। उसने इस व्यवसाय में जन्मजात प्रतिभा पायी थी फिर भूरि-भूरि प्रशंसा भी अर्जित की थी।

युवराज कंस ने उसके निवास आदि की भव्य व्यवस्था करवा दी थी। चित्रसेन, कंस का विश्वसनीय व्यक्ति है—मानसी ने समझ लिया था। इस चित्रसेन को ही माध्यम बनाना होगा। जिस तरह जल्लाद फांसी के लिए विशिष्ट किस्म का फंदा बनाता है—मानसी ने चित्रसेन को फन्दा बनाया था···उसके प्रति सद्व्यवहार ही नहीं करती, कला-संसार और नृत्याभिनय को लेकर कभी-कभी लम्बी वार्ता भी किया करती। चित्रसेन कभी-न-कभी युवराज कंस तक उसके स्वरमाधुर्य और कलाप्रिय स्वभाव की चर्चा करेगा—जानती थी मानसी।

यह हो रहा था···पर किसी भी बार मानसी ने युवराज से भेंट की उत्सुकता नहीं जतलायी। यही नहीं, उन्हें लेकर चर्चा भी नहीं किया। वह चाहती थी कि चित्रसेन भली-भांति समझ ले—मानसी कोई ऐसी-वैसी, साधारण युवती नहीं है, जो राजसी पुरुषों या धनिक समाज में रुचि रखती हो।

यह क्रम कुछ माह तक चला था···अशनिका नामक एक विश्वसनीय मागधी स्त्री को भी उसने गुप्त रूप से मथुरा बुलवा लिया था। वही मानसी के सदा पास रहती। सुन्दर थी, पुरुषों को रिझाने-मोहित करने की पर्याप्त कला भी थी उसके पास। मानसी ने अशनिका के माध्यम से चित्रसेन पर वश किया। अशनिका को वह इतना समय और अवसर दिया करती कि वह चित्रसेन को फांसे।

इस क्रम में अशनिका ने बहुत समय नहीं लिया। चित्रसेन स्वभावतः रसिक और नयी उम्र का था। शीघ्र ही अशनिका के जाल में उलझ गया। धीमे-धीमे अशनिका अपनी और चित्रसेन की प्रेम-व्याकुल भेंटों के सन्दर्भ में युवराज कंस के दिन-प्रतिदिन के कार्यक्रमों की पर्याप्त सूचनाएं बटोरने लगी।

अशनिका ये सूचनाएं मानसी तक पहुंचाती। मानसी उन पर विचार करती, उसे किसी ऐसे समय की तलाश थी, जबकि युवराज पूर्णत: एकांत में कहीं जायें और ठीक उस समय एक अन्य संयोगवश मानसी से उनकी भेंट हो।···यह भेंट निःसंदेह पिछली भेंट से अलग, सौन्दर्याकर्षण ही नहीं कामकाज से भरी होगी।···कैसे भी अरसिक क्यों न हों कंस उनके पौरुष को खलबली से भर डालेगी! पर बहुत दिनों, बहुतेक सूचनाएं पाते रहने पर भी मानसी को ऐसा समय या सूचना नहीं मिली थी—जिसका भरपूर उपयोग मानसी अपनी योजना के अनुसार कर पाती।

पर बहुत धैर्य था मानसी में···और एक दिन यही धैर्य काम आया। अशनिका ने उस दिन सूचना दी थी—'देवी!···आज सन्ध्या समय युवराज कुछ समय यमुना तट पर होंगे···'

'किस जगह?' मानसी ने पूछा।

अशनिका ने स्थान बतला दिया। बोली, 'चित्रसेन ने बतलाया है कि पिता से कुछ कहासुनी हो जाने के कारण आज युवराज कुछ व्यग्र ही नहीं दुखी हैं। उन्होंने पूर्व-निर्धारित आखेट कार्यक्रम छोड़कर यमुना किनारे टहलने का कार्यक्रम बनाया है···राजोद्यान की उस दिशा में दूर-दूर तक एकांत पड़ा है देवी!···युवराज सांझ ढलते ही उधर चल पड़ेंगे।'

मानसी कुछ बोली नहीं। दांत के नीचे होंठ दबाया और मस्तिष्क में एक साथ हजारों तरंगों की गति अनुभव की···एक गहरा सांस लेकर अशनिका से पूछा था, 'आशी, आज तो पूर्णचंद्र है ना?'

'हां, देवी!'

'तब हम भी उस दिशा में चलेंगी।' मानसी ने निर्णय ले लिया था। यही वह समय था—जिसकी खोज मानसी महीनों से कर रही थी···

वह मन ही मन बुदबुदायी थी—'युवराज!···अब मानसी देखेगी कि तुममें स्त्री के सौन्दर्यरस से बच पाने की कितनी शक्ति है।'···उसे लगा था कि वह मन ही मन हंस पड़ी है।

□

पूर्णचन्द्र की वह शीतल, रस बरसाती चांदनी और यमुना कि हौले-हौले किलकारियां भरती कोमल लहरें।···

मानसी ने उस रात कंस के उखड़ाव को अनायास ही अपने अंकपाश में इस तरह समेट लिया था कि अब तक कंस अपने हर क्षण बिखरे ही रहते हैं…वह मन-बुद्धि से तभी सहज-शान्त हो पाते हैं, जब मानसी उन्हें बटोर-कर अपनी स्वरमाधुरी से सहलाये !

मानसी ने जय ली थी कठोर कंस के वज्र-हृदय पर।…लगा था कि मानसी के भीतर युग-युगों से चल रही आग ठंडी हुई है। अपने ही विष में जलती-झुलसती नागिन ने दिन-दिन फन पटकते हुए पहली बार किसी को डसकर विष शान्ति पायी है। वह प्रसन्न थी। कंस की वे कठोर आंखें, तना हुआ चेहरा और पुष्ठ-गठीला शरीर उसने किसी कोमल बच्चे की तरह अपनी मुट्ठी में जकड़ लिया था…हां, बिलकुल ऐसी ही स्थिति में छोड़ा कंस को !

उस रात्रि कंस के यमुना किनारे यूं ही घूमते हुए मानसी सहसा जल के भीतर से ऐसे निकली थी जैसे स्वर्ग की अप्सरा ने अचानक देह-धारण कर यमुना से जन्म लिया हो।…

कंस अकपकाता-सा खड़ा देखता रह गया था। और मानसी उसे देखते हुए भी उसकी ओर से इस तरह अनदेखा किये हुए—जैसे उसे कुछ भी ज्ञात नहीं है।…

सारा विवरण तुरन्त तो ज्ञात नहीं हुआ था मानसी को, किन्तु बाद में बहुत कुछ अशनिका के मुंह से सुनने को मिला…वह सब, जो कंस के साथ उसके विशेष अगरक्षक के रूप में किनारे घूमते हुए चित्रसेन ने अशनिका को बतलाया था…

बोला था—'क्या कहूं अशनिका !…उस क्षण युवराज की क्या दशा हुई थी' चित्रसेन के स्वर मे जैसे कविता बहने लगी थी—'तुम्हारी स्वामिनी उसी पल यमुना मे से जलक्रीड़ा करती हुई बाहर आयी, जिस पल युवराज ने बालू पर पांव रखे…बहुत चिन्तित और व्यग्र थे वह। सहसा धसे रह गये थे। स्तब्ध वैसे चादनी को ही उन्होने साक्षात् देखा हो।…ओह ! सचमुच आश्चर्यजनक देह गठन है देवी मानसी का।…युवराज को मैंने नारियों मे सामान्यतः रुचि लेते नही देखा—वे केवल राजतंत्र और राज-नीति में ही रुचि लेते हैं—किन्तु उस पल तो सब कुछ भूलकर क्षण खड़े

ही रह गये।...'

'सच ?...' अशनिका ने बड़ी सफाई से अपने होंठों पर उभरने लगी मुसकान थामी थी।

'बिलकुल सच।...और यही कारण तो हुआ है कि आज भोर हुए ही सहसा युवराज ने मुझे स्मरण किया ?...'

'क्यों ?'

'उन्होंने कहलवाया है कि वह देवी मानसी से भेंट करना चाहते हैं...' चित्रसेन ने कहा था।

'आश्चर्य।...' अशनिका बोली थी—'पर तुम्हारे युवराज को यह कैसे ज्ञात हुआ कि जिन्हें उन्होंने यमुना-तट पर देखा—वह मेरी स्वामिनी ही है ?'

'मैंने बतलाया था ना...' चित्रसेन ने कहा—'वह तो कल्पना भी नहीं कर सके थे। जब तुम्हारी स्वामिनी गीले बालों को पोंछती हुई उन्हें गरदन में बल देकर पीठ पर फेंक रही थी, तब अचानक पूछ बैठे थे—यह कौन है चित्रसेन ?...और मैंने उन्हें बतला दिया।'

अशनिका इस तरह देख रही थी चित्रसेन को—जैसे असमंजस में पड़ गयी हो। चित्रसेन ने कुछ व्यग्र होकर पूछा था, 'क्या हुआ ?'

'कुछ नहीं।' अशनिका बोली थी—'युवराज ने देवी मानसी को स्मरण किया है, यह तो उनके लिए आनन्द और गौरव का विषय है, किन्तु...'

'किन्तु क्या ?...'

'वह कल रात्रि से ही तनिक अस्वस्थ हैं, चित्रसेन।...' अशनिका ने मुह लटकाकर उत्तर दिया था।

'ओह।...' चित्रसेन ने कहा था, फिर बोला—'कोई बात नहीं। मैं युवराज को सूचना पहुंचा देता हूं।'

'कहीं वह अप्रसन्न तो न होंगे ?' अशनिका ने स्वर में चिन्ता भरकर प्रश्न किया।

'न-न।...' चित्रसेन बोला था—'हो सकता है कि चिन्तित हो जायें। हमारे युवराज कठोर बहुत हैं, पर सदा कठोर नहीं होते।' वह चला गया

था···और अशनिका दौड़ी आयी थी मानसी के पास शब्दशः सब सूचना दे दी···

मानसी केवल मुसकरायी थी। दृष्टि में चपलता और होंठों पर विशिष्ट वाकपना अशनिका ने पूछा, अब क्या करना है देवी ?'

'कुछ नहीं आशी।···'मानसी ने इठलाकर आसन पर लेटते हुए छत की ओर आखें गडा दी थी। बड़बड़ायी —'केवल उनको देखना है—वह क्या करते हैं···?' फिर होंठ भीच लिये।

□

कुछ समय बाद आशी पुन. दौड़ती हुई आयी थी मानसी के पास··· चेहरे पर घबराहट, दृष्टि मे भय और वक्ष असहज ढंग से उठते-गिरते हुए, 'देवी ··। देवी ?'

'क्या हुआ ?' मानसी ने गरदन मोडी थी।

आशी जैसे-तैसे अपने वेग को थाम सकी, 'वह···वह····'उसकी सांस जैसे असयमित हो उठी थी—बेलगाम, वह···?'

'पर हुआ क्या ? जरा सहज होकर कहो ?'

'युवराज स्वयं आपसे भेंट के लिए आ पहुचे है देवी···।' मानसी ने लगभग धक्के की तरह समाचार दे डाला था।

'क्याअ्···?' मानसी इस तरह उठी जैसे आसन सहसा तप गया हो, 'वह···वह स्वय यहां आ पहुचे हैं ?'

'हां, देवी···।' आशी ने उसी तरह व्यग्र स्वर मे कहा था—'मैं—मैं उन्हें अतिथि-कक्ष मे बिठाकर आयी हूं···'

'ओह···।' मानसी बड़बड़ायी फिर अपने मे ही खो गयी। इस तरह जैसे आशी का कोई अस्तित्व ही न हो। एकदम चुप कमरे में शान्त सोच रही हो मानसी। फिर एक गहरा श्वांस लेकर त्वरित निर्णय लिया था उसने बोली थी, 'युवराज से निवेदन करो, सेविका अभी उपस्थित होती है।'

आशी दौड़ गयी अतिथि-कक्ष की ओर। मानसी ने अपने भीतर-बाहर रुग्णता को अभिव्यक्ति दी। चेहरे पर पीड़ा उगायी, स्वर, शरीर सभी को अस्वस्थ की भांति बना लिया और हौले-हौले अतिथि-कक्ष की ओर बढ़ी···

युवराज मुख्य कक्ष में शान्त बैठे थे। स्थिर जैसे ही मानसी उनके समक्ष उपस्थित हुई और झुककर प्रणाम किया, युवराज ने दृष्टि उठायी। मानसी को पहली नजर में ही अनुभव हो गया था—संकोच और दुविधा से ग्रस्त हैं कंस।

मानसी ने चेहरे पर सम्पूर्ण नाटकीयता बिखेरे हुए कहा था, 'अहो भाग्य देव! आपका आगमन हुआ। दासी को आदेश भिजवा दिया होता—स्वयं उपस्थित हो जाती?'

कंस की दृष्टि एक बार उठकर पुनः झुक गयी थी। मानसी की मृदुता ने जैसे जीवनसंचार ही कर दिया। कहा था '''विशेष कारण नहीं था, देवी'''। बहुत समय से तुम्हारे दर्शन नहीं किये थे'''और तट पर घटी घटना के कारण मन और भी व्याकुल था'''यही उचित समझा कि स्वास्थ्य समाचार ले लिए जायें''')' कंस को लगा था कि बोलते समय शब्द गले में झूलते हुए से बाहर निकलते हैं। निःसन्देह अस्वाभाविक'''फिर यह भी अनुभव कि मानसी की विशेष स्त्री शक्ति दृष्टि और स्वर का वह असन्तुलित भाव केवल समझी ही नहीं होगी, देख भी चुकी होगी। लगा कि असत्य बोलकर भी बोल नहीं पा रहे हैं'''मन रह-रह कर मानसी को दृष्टि भर-कर देखने बेचैन हो उठता'''

और मानसी'''? वह समझ गयी थी—जिस वांछित को चाहा था उसने—वह क्षण आ पहुंचा है। अब कंस पूरी तरह मानसी का मानस दास हुआ'''। जरासन्ध के आदेश निबाहने का कर्त्तव्य-काल आ पहुंचा। उसने आमन्त्रित करती दृष्टि से कंस को देखा, फिर कहा—'महाप्रभु का संवेदन समझती हूं और उसके प्रति बहुत आभार भी व्यक्त करती हूं''''' शब्द पूरे हो, तभी अशनिका आ पहुंची। कुछ फलाहार ले आयी थी। मानसी ने तुरंत पैंतरा बदल कर कहा था—'यों तो श्रीमान् को कुछ भी दान करना मूर्खता और मात्र अहम् होगा, किन्तु फिर भी दासी के निवास पर चरण पड़े हैं तो कुछ फल पान कर उसे कृतार्थ करें।'

कंस ने गले का थूक निगला। लगता था कि मानसी शब्द-स्वरों से उसके मन मे गहरे-गहरे उतरती जा रही है। स्त्री को लेकर सदा ही विचित्र-अरसिकता में खोये रहते कंस ने अनायास ही अपने आपको गहन रस-

मयता से सरोबार अनुभव किया। हौल से हाथ फलदान की ओर बढ़ा दिया···

मानसी कह रही थी—'युवराज ने मुझ निराश्रिता को न केवल शरण दी, जीवनदान भी किया है···यदि सम्पूर्ण समर्पण और निष्ठा से कुछ सेवा कर सकी तो सेविका को आनंद मिलेगा, सुखोपलब्धि होगी···।'

कंस ने चौंककर मानसी की ओर देखा। दृष्टि मिली। लगा था कि मन की अनंत गहराइयों को एक खलबली से भरती सौन्दर्य की बिजली कौंध गयी है···। गला और चटख आया था···

मानसी ने शब्दों ही शब्दों में बहुत कुछ स्पष्ट कर दिया था···प्रेम, समर्पण, और सेवा···यह किस ओर इंगित करता है? कंस ने सोचा।

मानसी कह गयी—'अधिक स्पष्ट और अधिक बिजलियाँ कौंधाती हुई, 'युवराज! मथुरा में मुझे सभी सुख-साधन आपने दिए हैं···पर···पर मेरी कुछ और ही इच्छा थी···'

'वह क्या देवी?' कंस ने प्रश्न किया।

'मात्र इतनी कि युवराज के व्यस्त समय से कुछ पल जब भी बचे, दासी को भेजें···अपने कृपावंत के चरणों में पहुंचकर सुख मिलेगा।'

सब स्पष्ट था···। बेहद खुला और धूप की तरह चमकता हुआ। कंस ने समझ लिया।···केवल समझा ही नहीं, मन में उतार लिया। मानसी ने सलज्ज भाव से गर्दन झुका रखी थी। कंस कुछ पल देखते रहे, फिर उठ खड़े हुए 'गंधर्वकन्या···। तुम पहली नारी हो, जिससे वार्ता और सानिध्य में इतना सुख मिला है···अब चाहूंगा कि तुम सदा ही मुझ पर यह सुख बरसाती रहो।'

'अ···हो भाग्य!' मानसी ने तुरंत उठकर कहा। उसका बदन फूलों की लता जैसा कम्पन से भर उठा था···

कंस चले गये···

पर कहां जा सके?

उसी रात चित्रसेन को भेजकर यमुना तट नौका विहार के लिए आमंत्रण दिया था मानसी को···।

पथरीला युवराज अनायास ही लहरों में जा पहुंचा था···फिर ये लहरें कब मानसी ने भंवर में बदल दीं—उसे पता ही नहीं चला···।

वे सभी आ पहुंचे थे···जिस गति से समाचार मिला था, उसी गति से आये थे। वे महाराज उग्रसेन ने सबसे अलग-अलग भेंटवार्ताएं कीं। सबके मन को जाना, इच्छायें समझीं! अधिकतर गणसंघ शासक इस पक्ष में थे कि जरासन्ध की चुनौती का मुंह तोड़ उत्तर दिया जाये···। पाशविकता के सामने सिर झुकाना उतना बड़ा अधर्म नहीं, जितना कि किसी मदान्ध सेना और स्वातंत्र्यहर्ता के सामने शीश झुकाना होता है···।

देवक, कृतवर्मा, देवार्ह, सत्राजित्, शूरसेन और वसुदेव की भी यही इच्छा थी! हर राजा से भेंटवार्ता के समय महाराज उग्रसेन ने युवराज कंस को अपने साथ रखा था। वह भी यदा-कदा राय देते···पर यह सोचकर मन बुझता जा रहा था कि वृष्णि, अन्धक और यादववंशी अधिकतर राजा जरासन्ध की आधीनता स्वीकारने को तैयार नहीं है। सभी से बातचीत के बाद एक सभा भी हुई···इस सभा के बहुविधि तर्कातर्क हुए···और हर तर्क ने एक ही परिणाम पर पहुंचाया···

कंस निराश होते गए। नाश···। महानाश···। जितने मृत्युभय से चिन्तित हुए, उससे कहीं अधिक इस पीड़ा ने खिन्न किया कि विशाल गणसंघ के स्वामी होते-होते रह जा रहे हैं···

उन्होंने अलग-अलग राजाओं से भेंट की। जरासन्ध की अपार शक्ति और सत्ता का संकेत दिया···बहुतों के मन हिचकिचाहट से भर दिये, बहुतों को यह अहसास दिलाया कि उचित यही होगा, आज जरासन्ध की महाशक्ति से मैत्री भाव से समर्पण किया जाये, फिर शक्ति बटोरकर यादव गणसंघ को स्वतन्त्रता दिलायी जाये···तर्कातर्क में अलग-अलग बहुतों ने

निर्णय या तो बदल दिये या फिर अनिर्णय की स्थिति में ला दिये···कुछ थे, जिन्हें समझाना तो दरकिनार, उनसे अधिक बहस भी नहीं कर सके थे···

एक थे देवक। पिता उग्रसेन के भाई। उन्होंने कंस की हर राय पर केवल यह कहकर अपनी असहमति प्रकट कर दी थी—'पुत्र···। महाराज उग्रसेन गणसंघ की सर्वोच्च शक्ति हैं। यों भी मेरे बन्धु हैं, तुम्हारे पिता। उनका निर्णय यदि आत्मघाती हो सकता है तो आज्ञाकारी भाव से मैं उसे भी शिरोधार्य कर लूंगा!'

कंस चुप हो गये थे···

श्वफल्क उनसे भी आगे निकले। कहा था—'यह तो महाराज उग्रसेन की कृपा है कि उन्होंने सम्पूर्ण गणसंघ के नेतृत्व से सम्मति लेना उचित समझा है, अन्यथा मैं तो उनका वह निर्णय भी मान लेता, जिसे वह मथुराधिपति के नाते दे देते···। अतः मैं बाध्य हूं, भाई···। मैं कुछ नहीं कर सकता!'

कंस उखड़ाव और दुविधा से भरे-भरे पुनः राजमहल में जा पहुंचे थे। ऐसे राजनीतिक भंवरजाल में फंसे हुए, जिससे मुक्ति नहीं सूझ रही थी···।

व्यग्रभाव में पलकें मूंदकर लेट रहे···। नींद नहीं आ सकी थी। कैसे आती? कल की सभा में जरासन्ध के दूत को निर्णय जो दिया जाना है?··· महाराज उग्रसेन महाशक्ति के अनुरोध को जिस क्षण अस्वीकार करेंगे, उसी क्षण कंस की राज्येच्छा के मरणपत्र पर हस्ताक्षर हो जायेंगे!



सहसा पलकें खुल गयीं···। जूही के कुछ फूलों की तीव्र गंध ने चौंका दिया उन्हें। मानसी सामने थी। मुसकराती, इठलाती और उससे भी कहीं अधिक मांसल शरीर का सौन्दर्य सागर उंडेलती हुई···

कंस का मन हुआ था कि झुंझलाकर कह दें उससे—'इस क्षण मुझे एकांत चाहिए मानसी···।' पर कहते-कहते थम गए। भला तन-मन में बिखरे मरुस्थल में अनायास ही फूट पड़े झरने को अनदेखा न कर देना कैसे संभव है···? लगा था कि मानसी की उपस्थिति मन की व्यग्रता

थामेगी।

'बैठो, मानसी !' उन्होंने कहा, फिर पास ही स्थान बना दिया।

मानसी बैठ रही···मांसल देह और सौन्दर्याकर्षण का मोहक जाल फेंकती हुई। पूछा—"देखती हू कि कुमार कुछ व्यग्र है ?'

'हा-अ्, मानसी !' कस ने गहरा श्वास लेकर कह दिया था—'संभवतः कल सभा मे महाराज उग्रसेन मगधराज जरासन्ध का प्रस्ताव अस्वीकार कर देंगे !'

'किन्तु···किन्तु परिणाम···' मानसी ने स्वर में समूचा भय, दुश्चिन्ता और बेचैनी उंडेलकर कहा था—'आश्चर्य है।···यह तो दृष्टि होते हुए भी दृष्टिहीनता वाली बात होगी।'

'यही कुछ तो मैं विचार रहा हू गन्धर्वपुत्री ···!' मानसी की ओर बेबसी से देखकर राजकुमार कंस ने कहा था—

आगे कुछ कह सकें, कि मानसी ने शब्द-छोर थाम लिया, बोली—'आश्चर्य है, युवराज !···विशाल गणसंघ के सभी राजा उपस्थित हैं और सभी इस आत्मघाती निर्णय का समर्थन कर रहे हैं ?'

'नही-नही, मानसी !' कस ने कहा—'अनेक से मेरी चर्चा हुई है। वे अनिश्चय की स्थिति मे हैं···न तो मथुराधिपति की अवहेलना का साहस है उनमें, न ही जरासन्ध से जूझने की इच्छा···पर वे कुछ नही कर सकेंगे !'

मानसी सोचती रही। सहसा इस तरह बोली थी, जैसे बहुत विचार करके बोली हो—'क्या यह संभव नही युवराज कि सम्पूर्ण सत्ता आपके हाथ हो और निर्णय आप दें ?'

भौचक्का होकर देखने लगा था कंस···मानसी ने कहा था—'चकित मत होइए, कुमार···! राजनीति-कूटनीति मे साम, दामदड, भेद सभी कुछ धर्म कहे गए हैं···असंख्य लोगो की प्राण रक्षार्थ और व्यर्थ ही पराजय पाने के बजाय क्या यह उचित नही होगा कि सत्ता आप सभाल लें ?'

'और पूज्य उग्रसेन···?" कस ने अकचकाकर कहा। उसके माथे पर अजब-सी उत्तेजना के साथ-साथ ढेर सलवटें बिखर गयी थी···

'आप तो घोर राजनीतिज्ञ कहे जाते हैं कुमार !···' मानसी उसी सह-

जता से कहे गई—'जन सामान्य को जितना समझी हूं मैं, वह आपसे आतंकित और भयभीत रहते हैं'''ईश्वर की आप पर कृपा है। मथुरा गणसंघ के बहुत पास है जरासन्ध के मित्र शिशुपाल'''ऐसे अवसर पर यदि आप शक्ति से ही सही, पर सत्ता संभाल लेंगे तो अनिर्णय में पड़े गणसंघ के राजा तुरन्त कुछ निर्णय नहीं कर सकेंगे'''शेष रहे, वृद्ध मथुराधिपति के समर्थक वे भी सहसा कुल वंश, गणसमठल आदि का विचार करके तुरन्त कुछ नहीं कर पायेंगे'''इस बीच जितना समय मिलता है, उतना आपकी सत्ता जमाने के लिए काफी होगा !'

कंस एक पल टकटकी बांधे हुए देखता रहा था मानसी को'''सहसा उसने होंठ काट लिया—"हां, बहुत सीमा तक तुम्हारी राय उचित ही है मानसी।'''यह जानकर प्रसन्न हूं कि तुमने जिस अनुपात में सौन्दर्य पाया है, उतनी ही बुद्धिमती हो तुम'''।'

मानसी ने उत्तर दिया—"संयोग भर है युवराज कि दासी को आपने सम्मति योग्य समझा'''।'

पर कंस ने जैसे कुछ सुना ही नहीं'''सम्भवतः सुनने का न तो समय रहा था उसके पास और न ही उसे आवश्यकता अनुभव हुई थी। केवल इतना महसूस हुआ था जैसे मानसी की राय मरुस्थल में मुरझाती महत्वाकांक्षा को शीतल जल से सींच गई है !

मानसी ने कहा था, "मुझे आज्ञा दें कुमार'''।'

कंस ने उसकी ओर देखा नहीं। यान्त्रिक भाव से कह दिया था, 'हां, तुम जाओ'''। और सुनो'''?'

मानसी बढ़ते-बढ़ते ठिठक रही।

'चित्रसेन को भेज देना'' द्वार पर होगा वह !'

'जैसी कुमार की आज्ञा !' मानसी तीव्रगति से आगे बढ़ गई। मुख्य द्वार के बाहर बैठे चित्रसेन को उसने भीतर जाने के लिए कहा फिर तीव्रगति से अपने निवास की ओर चल पड़ी।



चित्रसेन सामने पहुंचा। यांत्रिक स्वर में कंस का आदेश मिला था उसे—'चाणूर और मुष्टिक को बुलाओ'''इसी क्षण !'

कुछ भी नहीं समझ सका था चित्रसेन। युवराज के स्वर में जो कठोरता थी, उसने कुछ कह पाना तो दूर, कंस की ओर देखने तक का साहस न होने दिया···। वह मुड़ा। कंस ने आगे कहा था—'उनकी यात्रा गुप्त रहे—यह स्मरण रखना!'

'जी, देव!'

वह चला गया था।

कंस उठे, बदन में अजब-सी सनसनी अनुभव करते हुए तेजी से चहलकदमी करने लगे···उसी गति से विचार दौड़ रहे थे···विचारों के बीच-बीच मानसी के सुझाव···एक-एक शब्द स्थिति के अनुसार सटीक लगता था। सच ही तो कहा है उसने। कुछ स्तब्ध रह जायेंगे और कुछ अनिर्णय की स्थिति में। जब तक उनकी स्तब्धता टूटेगी या अनिर्णीत मन निर्णय की देहरी तक पहुँचेंगे—उस समय तक कंस सिंहासनारूढ़ हो चुके होंगे। चाणूर और मुष्टिक—विश्वसनीय थे उनके। उन्हीं की तरह कटु, कठोर और दुस्साहसी। उससे भी कहीं अधिक शक्ति-आराधक। मथुरा की सेना के एक बड़े हिस्से की देख-रेख वे ही करते थे। बहुत प्रभावशाली।

उन्हें अपनी योजना में सेवक-भाव से सम्मिलित करना दोष नहीं होगा। वे वह सब कर सकते हैं, जो कंस चाहेंगे।

पर मन रह-रह कर व्यग्रता की एक आंधी का थपेड़ा भी दे देता था। क्या वह सब करना उचित होगा, जो वह करने जा रहे हैं? इतने बड़े राजनीतिक उलटफेर को मथुरावासी सह सकेंगे···? उससे भी अधिक भय और चिन्ता का कारण हैं वसुदेव। यादव गणसंघ के अति प्रभावशाली व्यक्ति···। वे सहजता से झेल सकेंगे उस सबको? वृद्ध मथुराधिपति उग्रसेन का सहसा गुम हो जाना कहीं अस्वाभाविक तो नहीं लगेगा उन्हें ··?

निस्सन्देह स्वाभाविक तो नहीं ही होगा···

पर स्वाभाविक हो जाएगा उस समय जब मथुराधिपति की सेना का एक महत्वपूर्ण भाग ही टूट-बिखर जाए···?

सोच, विचार में कुछ ही समय बीता था कि चित्रसेन चाणूर और मुष्टिक को लेकर उपस्थित हुआ। वे विशाल देहधारी शक्तिसम्पन्न व्यक्ति थे। दोनों ही मल्लयुद्ध में विशेष पारंगत। एक मुष्टिका युद्ध में अद्वितीय

था तो दूसरा पैंतरेबाजी के साथ मल्लसंग्राम में ।

युवराज ने उन्हे आदरपूर्वक आसन दिया'''फिर कहा था, मेरे विचार मे आप दोनो ही वीरो को मथुरा मे हो रही उथल-पुथल और जरासन्ध के दूत आगमन की सूचना मिल चुकी होगी ?'

'हां, कुमार !' वे एक साथ बोले थे ।

'कल राज्य की ओर से मगधराज को प्रत्युत्तर जायेगा'''।' कंस ने चिन्तित स्वर मे बतलाया था—'और'''और इस समय मैंने उसी सन्दर्भ में आप दोनों को यहां बुलाया है'''।'

चाणूर और मुष्टिक चौंके। वे मथुरा की सेना मे तो थे, किन्तु उस स्थिति मे उनकी गणना नही होती थी, जहां राज-निर्णय मे उन्हे सहायक और सहयोगी रखा जाता'''अविश्वास से भरकर युवराज को देखने लगे थे ।

कंस के चेहरे पर अजब-सी रहस्यमयता बिखरी हुई थी'''उतनी ही रहस्यपूर्ण, जितनी कि बढते जाते रात्रि के प्रहरो में थी'''बहुत कुछ घटते हुए को छिपाये रखने का रहस्यभाव !

चित्रसेन जा रहा था। कंस ने आदेश दिया था उसे। 'द्वार बन्द करते जाना चित्रसेन'''।'

'जो आज्ञा, स्वामी !' वह बाहर निकल गया ।



रात्रि का दूसरा प्रहर प्रारम्भ ही हुआ था कि वे बाहर आए। चाणूर और मुष्टिक के साथ विश्वसनीय सैनिको की कुछ टुकड़ियां थी। गहरे, मावसी अन्धकार में कब, किस तरह सांपों की तरह रेंगते हुए वे अपनी-अपनी निर्दिष्ट जगहों पर जा पहुंचे थे—किसी को ज्ञात होना तो दूर, आशंका तक न हुई। सम्पूर्ण राजमहल के सैनिक और प्रहरी एक-एक कर बदल दिए गए। दोनों नायकों ने स्वयं ही कुशलतापूर्वक सब कुछ अपनी आंखों के सामने निबटाया।

ठीक उसी समय कुछ टुकड़ियों ने नगर के मुख्य प्रहरियों को उनके स्थान से या तो हटाया या मार डाला। शव रातोंरात यमुना की वेगमयी लहरों के हवाले कर दिए गए। मुख्य सैनिक केन्द्रों पर या तो कस के

विश्वसनीय आदमियों का अधिकार हो गया या वे छलयुद्ध में इस तरह मारे गए कि कराहें तक लेने का अवसर नहीं मिला।

कंस निश्चित स्थान पर संदेशवाहक की प्रतीक्षा कर रहे थे···रह-रह कर मन धड़कता, किन्तु उसे कठोरता से सहेज लेते। समझ चुके थे, अब नहीं तो कभी नहीं। प्रहर पूरा होते-न-होते सब कुछ इस चपलता और चतुरता से हुआ था कि किसी को तनिक भी आशंका नहीं हुई। कारागार से लेकर सैन्य मुख्यालय तक छल-युद्ध की ऐसी आंधी फैली, जिसने तिनकों की तरह अपनों द्वारा, अपनों को ही टूटते-बिखरते देखा ··।

सब कुछ बदला जा चुका था···! जिस समय चाणूर और मुष्टिक सफलता की मुसकानें लिए हुए युवराज कंस के सामने उपस्थित हुए—कंस को उन शब्दों के सुनने की आवश्यकता नहीं हुई थी, जो उन्होंने कहे। वे बोले थे—'सब कुछ यथापूर्वक पूरा हुआ, कुमार···! अब ?'

कंस ने उत्तर नहीं दिया। चुपचाप महाराज उग्रसेन के शयनागार की ओर बढ़ चले। पीछे-पीछे चाणूर, मुष्टिक और उनके विश्वसनीय साथी···

राजा के शयन-कक्ष में प्रवेश करते हुए भी कोई टोकाटोकी या प्रश्नोत्तरों का अवसर नहीं आया। प्रहरी वहां भी बदले जा चुके थे···

कंस और उनके साथियों को आता देखकर ही शयनागार का द्वार खोल दिया गया।



महाराज उग्रसेन वृद्ध थे। शरीर जर्जर होता हुआ। उससे भी कहीं अधिक जर्जरित मन सोते थे, किन्तु नींद इतनी कच्ची आती थी कि पदचापों से टूट जाए। जबसे मगधराज का दूत आया था, तब से यह नींद न के बराबर हो चुकी थी।

बहुत धीमे, बिलकुल शब्दहीन चलने का प्रयत्न किया था उन सभी ने, किन्तु राजा ने एकदम पलकें खोल दी थीं—'कौन ?'

'मैं हूं पूज्य···' कंस ने बहुत शान्त किन्तु सपाट स्वर में कहा था—'आपका पुत्र कंस !'

'इस समय किस कारण आगमन हुआ, राजसुत ?' राजा व्याकुल होकर

उठ पड़े। इस बीच राजा की विशाल शैय्या सैनिकों ने घेर ली थी। राजा चकित, व्यग्र होकर रात्रि के दीप की मन्द ज्योति में अपने पुत्र को आश्चर्य और अविश्वास से देख रहे थे। समझ में कुछ नहीं आ रहा था...जिस आशंका ने मन में भय पैदा किया था—उस पर विश्वास नहीं कर पा रहे थे...कंस उदण्ड है, क्रोधी है, दुर्दान्त है—पर वह अपने पिता परिवार के लिए भी घातक हो सकता है? यह भला किस प्रकार विश्वास किए जाने योग्य शंका है?

'क्षमा करें, महाराज...!' कंस बोला था—'मथुराधिपति के नाते अब आपका मन-मस्तिष्क असन्तुलन की आयु में जा पहुंचा है, अतः मैंने बाध्य होकर यह निर्णय लिया कि आप राजपद छोड़ दें...।' विशाल गण-संघ का शुभाशुभ का निर्णयाधिकार किसी युवा के हाथ में होना चाहिए... अतः प्रार्थना करता हूं कि आप मेरा राजतिलक कर दें।

राजा की क्रोधाग्नि सहसा प्रज्वलित हो उठी—'नीच...! कुलकलंक ...! तुझे यह धृष्टता करने का साहस कैसे हुआ...? तू जानता है ना कि मेरे एक संकेत से तेरा यह मदमत्त स्वर सदा-सदा के लिए समाप्त हो जाएगा'' ? क्या तू भूल गया है कि मथुराधिपति का शक्ति केन्द्र भले ही मथुरा हो, किन्तु उनकी बारह भुजाओं जैसे बारह राज्य भी हैं...। मूर्ख ...! तू...।'

राजा उठने को हुए, किन्तु कंस के दृष्टि संकेत ने उन्हें पल भर में अवश कर दिया। उन्होंने पाया कि वह अशक्त स्थिति में दो सैनिकों के बीच जकड़े हुए कांप भर रहे हैं।

मुझे खेद है राजन...!' कंस ने कहा था—'उत्तेजना और असन्तुलन-वश आपने मथुरा गणसंघ का तो दूर, अपना भी शुभ विचार नहीं किया ...।' फिर वह चाणूर की ओर मुड़ा था—'महाराज के लिए विशेष रूप से व्यवस्थित किए गए कारागृह तक इन्हें पहुंचा दो...।'

सैनिक उग्रसेन को ले जाने लगे थे...वे छटपटा रहे थे, चीख रहे थे—पर विशाल राजभवन की दीवारों ने कृशकाय राजा की हर चीख, हर श्राप को अपने भीतर पी डाला था। सैनिकों ने कारागृह तक ले जाते हुए मार्ग में राजा के स्वरों तक को बाहर आने का अवसर नहीं दिया...।

रात के एक प्रहर के भीतर ही मथुरा के शक्तिसम्पन्न गणसंघ का पूरा इतिहास बदल गया था···अगली भोर हुई थी, किन्तु सन्नाटे से भरी हुई। प्रकाश जनमा था, पर दूर-दूर तक विवशता और निराशा का अन्धेरा अपनी कोख मे समेटे हुए···और इसी अन्धकार में नये मथुराधिपति का राजतिलक हुआ—ऐसे जैसे सैकड़ों बेबस हाथ उठे हों उन्होंने नये राजा के लिए जय-जयकार किए हों! आशीर्वचन के शब्द उच्चारे हो, पर हर जय-जयकार अदृश्य घृणा के शाप से भरा हुआ, हर आशीर्वचन खोखला और बेमानी!

गणसंघ के राजाओं की बिखरी सम्पतियों और टूट चुके आत्मविश्वास ने अनायास ही मथुरा को एक क्रूर, मदान्ध शासक के हाथों सौंप दिया···! और एक नई कहानी प्रारम्भ हुई, जिसका न आदि दीखा था—न अन्त दीख रहा था···

मथुरा में एक नया सूर्योदय हुआ। पर इस सूर्योदय में न तो तेज की किरणें थीं; न ही गणतन्त्र के जन-गौरव का तेज···! इसके विपरीत यह सूर्योदय गणतंत्र से सहसा राजतन्त्र के बदलाव की पीलिमा लिए हुए था। भय और आतंक की बदलियों से घिरा हुआ। अपने फीके, अस्वस्थ चेहरे से सम्पूर्ण यादव जनपदों को निहारता हुआ। एक वीभत्स चेहरा।

इस नये चेहरे ने कितने पंछी भाव से उड़ते मन-विचारों को आक्रांत किया, कितने सुन्दर चेहरों पर असौन्दर्य की कालिख बिखेरी, कितने शिशुओं को संसार में आख खोलने के पूर्व ही बन्दी भाव प्रदान कर दिया—कहा नही जा सकता···! केवल इतना ही कहा जा सकता था कि वहा कहने-सुनने के लिए कुछ शेष न रहा!

राजनीति के किस चक्र ने यह बाजी बदली, किस सम्मोहन ने युवा राजकुमार कंस को सहसा उदण्डता से कही आगे अभद्रता में बदल डाला कोई नही जानता! जो जान रहे थे, वे शान्त नही थे···पर अशान्त भी नहीं हो सके। केवल स्तब्ध रह गए···।

वसुदेव रात्रि में निश्चिन्त नीद सोये थे, पर भोर होते ही उन्हें जगाया गया। विशेष दूत सन्देश लिए हुए द्वार पर खडा भेंट की प्रतीक्षा कर रहा था···अन्यमनस्क-से उठे और प्रश्न किया, 'ऐसा क्या हुआ···? इस समय दूत?'

'हां, देव···! 'सेवक के स्वर और चेहरे पर विचित्र-सी असहजता बिखरी हुई थी। उसने कुछ थमकर कहा था—'कुछ विशेष कारण ही है···।'

वसुदेव ने गहरा सांस लिया, उठ पड़े। कहा 'भेजो उसे !'

दूत गया—दो पल बाद जो व्यक्ति उपस्थित हुआ—उसे देखकर चिन्तातुर हो उठे। 'तुम—वसुहोम···?'

'हां, मन्त्रिवर···!' वसुहोम की आवाज भी पिटी हुई थी—'बड़ा अनर्थ हुआ ! युवराज कंस ने महाराज को बन्दी बना लिया है।'

वसुदेव ने सुना। कुछ क्षण तो वसुहोम को देखते ही रह गए। विश्वास नही हो रहा था कि जो कुछ वह कह रहा है—वह सत्य है ? दोहराया—'यह क्या कह रहे हो···? महाराज को बन्दी···'

शब्द पूरे नहीं होने दिए थे वसुहोम ने, 'हां, मंत्रिवर···! मैंने जो कुछ कहा है, अक्षरशः सत्य है। महाराज आज रात्रि में ही बन्दीगृह भेजे जा चुके हैं···'

'पर···पर यह कैसे हो सकता है !' वसुदेव की नींद उड़ चुकी थी। इस तरह जैसे कभी सोये ही नही थे। आलस्य किस कोने में जा दुबका था—वह भी अनिश्चित···! इस तरह उठे जैसे किसी जहरीले कीड़े ने काटा हो···। आगे क्या पूछा जाए क्या जाना जाए—निश्चित नही था।

कुछ समय के लिए प्रकोष्ठ चुप्पी से भरा रहा फिर वसुदेव के प्रश्न ने उसे तोड़ा—'विश्वास नही कर पा रहा हूं वसुहोम···। कुमार उद्दंड हैं, क्रोधी भी हैं किन्तु इतने मर्यादाहीन हो सकते हैं—विश्वसनीय नहीं लगता !'

'घटित के लिए विश्वस्त और अविश्वास की कसौटियां नहीं हुआ करती, देव···।' वसुहोम ने शान्त स्वर में उत्तर दिया—'महाराज बन्दीगृह में हैं। और बन्दीगृह कुमार के विश्वस्त व्यक्तियों की देखरेख में हैं··· सारी रात्री कुमार के विशेष कक्ष में उनके विश्वसनीय साथियों यथा केशी, चाणूर मुष्टिक और मगधराज जरासन्ध के विशेष दूत सुषेण की मंत्रणा होती रही है···आगे क्या कुछ होगा—कहा नहीं जा सकता !'

'प्रद्युम्न कहां है ?'

'वह भी युवराज के पक्ष में ही हैं, महाराज !' वसुहोम ने उत्तर दिया। वसुदेव स्तब्ध खड़े रहे लगा था कि वसुहोम का समाचार शब्दशः सत्य है। जिन-जिन व्यक्तियों के नाम लिए गए थे, उनको कभी भी चरित्र को

दृष्टि से अच्छा नही समझा था वसुदेव ने। बहुत कुछ उन्हें लेकर जानते भी थे। प्रद्युम्न के दब्बू स्वभाव से परिचित थे वह···केशी के उग्र स्वभाव से भी···। मथुरा गणसंघ की ये दो विशेष शक्तियां थी जो कंस की समर्थक बन चुकी थी···। इन सबसे अलग सबसे ज्यादा चौंकाने वाला नाम था सुषेण का। मगधराज जरासन्ध का विशेष दूत···।

लगा था कि आंखों से लेकर मस्तिष्क तक चित्रवत् षड्यन्त्र की सारी योजना वसुदेव इस समय भी घटते देख पा रहे हैं···जरासन्ध की शक्ति-सहायता का विश्वास पाकर ही कंस ने यह उग्र कदम उठा लिया होगा···। यह भी कि केशी और प्रद्युम्न भी अपने निहित स्वार्थों के लिए उसके सहयोगी बन गए होंगे···।

वसुहोम उसी तरह सिर झुकाये खड़ा था, जैसे सम्मानित मन्त्री के अगले आदेश की प्रतीक्षा कर रहा हो···पर वसुदेव थे कि तुरन्त कुछ निर्णय नही कर पा रहे थे। निर्णय के योग्य स्थिति भी नही थी। निश्चय किया था—पहले समूचे वातावरण, स्थिति और सामर्थ्य का अनुमान कर लेंगे, फिर किसी निर्णय तक पहुच सकेंगे···कोरी उत्तेजना मे भर कर कोई ऐसी-वैसी बात कह देना या कि निर्णय ले लेना इस समय असन्तुलितता ही हो सकती थी। कहा, 'तुम कुछ समय प्रतीक्षा करो, वसुहोम···। समूची स्थिति को समझो ज्ञात करो कि मथुरा के आसपास या कही दूर मगध सेनाओं का तो कोई जमघट नही है···? यह भी पता लगाना कि सुषेण के अतिरिक्त कौन-कौन लोग हैं, जिनसे युवराज कंस मिलते-जुलते रहे थे··· यादव गणसंघ के लोग भी तो हो सकते हैं जो उनके सहयोगी हुए हों?' इन सभी सूचनाओं को पाकर मुझे हर्ष होगा—अगले निर्णय मे सुविधा भी रहेगी!'

'जैसी आपकी आज्ञा श्रीमन्···!' वसुहोम ने प्रणाम किया। चला गया। और वसुदेव फिर से बहुमूल्य शैय्या पर जा लेटे···पलकें बन्द कर ली—पर यह निद्रा नही ऐसी जागृतावस्था थी—जिसे न तो तोड़ा जा सकता है, न झकझोरा जा सकता है!



आवश्यक और अनिवार्य सभा का आयोजन हुआ।

सूचना वसुदेव तक भी आयी···। सेवक से पूछा था—'अन्य जनपदों और राजाओं तक भी यह सूचना भेजी गई है ना ?'

'मुझे ज्ञात नही, श्रेष्ठवर···।' सेवक ने विनीत, किन्तु भय की घबराहट से डूबा हुआ उत्तर दिया था—'मुझे केवल आप तक सन्देश पहुचाने के आदेश दिए गए थे।'

'हूं···' वसुदेव बोले। बोले थे या सिर्फ अपने से ही बड़बड़ाकर कह गए थे—याद नही केवल इतना याद है कि वह बोले···अपना स्वर उन्ही ने सुना था।

सेवक ने अभिवादन किया—लौट गया। वसुदेव का मन हुआ था—न जायें ऐसी राजसभा मे···। राजाज्ञा का उल्लघन कर दें। कस के प्रति केवल घृणा की नही, घोर वितृष्णा की भावना मन मे घर कर गई थी, किन्तु लगा ऐसा करके राजनीतिक दृष्टि से भूल करेंगे। अभी उनके लिए उचित यही है कि शान्त भाव से केवल दर्शक श्रोता बने रहें। देखें कि क्या कुछ घटा है, किस तरह घटा है और आगे क्या कुछ घट सकता है···। रह-रहकर मन निराशा से भर उठता था। रात्रि के एक पहर मे ही शक्तिशाली मगध ने मथुरा की गणसघीय शक्ति और पद्धति को नष्ट भ्रष्ट कर डाला। भला ऐसी स्थिति मे क्या किया जा सकता था···? करने का विचार भी व्यर्थ···। समुद्र के भीतर एक खौलता हुआ जलबिन्दु डाल दिया जाए तो क्या समूची जलराशि खौलने लगेगी···? वसुदेव ऐसा बचपना नही कर सकते···।

पर न करना भी तो अधर्म होगा ! यदि राजतत्र का धर्म है दमन तो गणतत्र की धर्मशिक्षा है उसके प्रति निरन्तर अवरोध-विद्रोह का भाव रखना···। भला इस धर्म से कैसे विलग हो सकेंगे वसुदेव···? वह मथुरा के केवल मंत्री नही, गणसंघ के एक जनपद के राजपुत्र भी हैं। शूरसेन जनपद के तेजस्वी राजा देवक के निकटस्थ···। फिर मथुराधिपति के प्रति उनकी एक राजकीय भर नही, पारिवारिक जिम्मेदारी भी है। महाराज उग्रसेन उनके सजातीय हैं। पितृबन्धु की तरह। उनके लिए वसुदेव यदि प्राणों की बाजी भी लगा देंगे, वह भी कम···।

फिर धर्मार्थ और समाजशुभ के लिए मरण,. चिर-जीवन- प्राप्ति का

अमरतत्व होता है···। इस अमरतत्व को गणसंघ के संस्कार ने ढाला है उनमें। वसुदेव इस संस्कार से विलग नहीं होंगे!

किन्तु संस्कार और धर्म के नाम पर विवेकहीन ढंग से प्राणदान कर देना भी एक प्रकार की मूर्खता है···। उचित यही होगा कि वसुदेव शान्त रहकर केवल स्थिति देखें, अनुकूल वातावरण को परखें···

वही करेंगे।

और वह सब करना है तब उन्हें अति-सहज भाव से नये राजा की सभा में पहुंचना होगा। उसकी बात सुननी होगी, विवेकपूर्वक इस क्षण चुपचाप समर्थन भी दे देना होगा—

'हां, यही करना होगा मुझे···।' सहसा वह जैसे अपने को ही आदेश दे बैठे थे—फिर अपने से ही सहमत हुए—'निस्सन्देह यही करूंगा मैं!'

वह राजसभा में पहुंचने की तैयारी करने लगे थे। नितान्त यांत्रिक ढंग से। समूची शक्ति और विवेक जुटाकर उन्होंने मन की उद्विग्नता थाम ली थी। स्वर, चेहरा, दृष्टि व्यवहार सभी में एक सन्तुलन कायम किया था ··कुछ समय बाद राजसभा में होंगे वह। कंस मथुराधिपति के स्थान में···।

यह केवल मथुराधिपति होगा या सम्पूर्ण गणसंघ का नायक···? एक प्रश्न मन में कौंधा था वसुदेव के—फिर बुझ गया। कालचक्र की गति क्या कुछ, किस तरह घटायेगी—बहुत घटना शेष था!



सभा हुई—पर सन्नाटे के उसी स्तब्ध वातावरण में डूबी हुई। केशी ने राजघोषणा की थी—'समयानुसार राजनीति में उलटफेर होते रहना समय-सिद्धांत है। सम्भवतः इसी कारण महाराज उग्रसेन ने अपनी वृद्धायु और अस्वस्थता के कारण युवराज कंस को गणाधिपति निर्वाचित करना उचित समझा है···! आप सभी का स्नेह-समर्थन पाकर वे मथुरा और सम्पूर्ण गणसंघ को गौरवान्वित करेंगे। न्याय, धर्म और शुभ परम्परा का निर्वाह भी उसी भांति होता रहेगा, जिस भांति पूज्य महाराज उग्रसेन के समय से होता आया है···।

वसुदेव ने सुना। दृष्टि चारों ओर घुमायी। सभा में उपस्थित

तर लोग या तो उन्ही की तरह स्थिति के साथ चुपचाप दर्शक बने हुए थे या फिर कंस के समर्थन में आ चुके थे...। कुछ दोहरे-तिहरे स्वर उठे—'शुभम्'''! महाराज का निर्णय उचित ही है !"

'सुनकर प्रसन्नता हुई'''। अब राजतिलक का विधि-विधान पूरा हो।' प्रद्युम्न ने आसन से तत्परतापूर्वक उठकर कहा।

वाद्य बजे। मंगलगान प्रारम्भ हुआ और महाराज कंस के राजतिलक हेतु पण्डित उपस्थित हुए'''!

मथुराधिपति के सिंहासन पर रखा था भव्य मुकुट'''। गणतन्त्र के बहुमुखी प्रकाश से कौंधता हुआ ! न्याय, सत्य और जन-जन की कल्पनाओं-भावनाओं से भरा हुआ'''। वसुदेव के मन में हल्की-सी कसक उठी थी—यह मुकुट जिस क्षण दुरभिमानी कंस के माथे चढ़ेगा, उसी क्षण ये जन भावनाएं-कल्पनाएं छुईमुई की तरह मुरझाकर रह जायेंगी !

तीव्रगति से बजते वाद्ययन्त्रों का कोलाहल रसमय से कहीं अधिक कर्णकटुता से भरा लगा था उन्हें'''केवल उन्हें ही क्यों, बहुतों को लगा होगा'''! पर कभी-कभी कैसा बेबस होता है सत्य ? असत्य को केवल सहता नहीं—उससे समझौता करने के लिए भी बाध्य हो जाता है।

वे शान्त बैठे रहे थे। वे सब, जो शान्त रहते आये थे'''। वे अशान्ति उत्पन्न करने लगे थे—वे सब, जो सदा शान्त रहते आए थे'''। सत्य के मुंह पर असत्य का यह थप्पड़ तिलमिला डालने वाला था'''।

पर यह तिलमिलाहट सहना मथुरा की नियति'''। उससे भी अधिक तिलमिलाहट उस समय सही थी उन्होने जब राजमुकुट माथे पर पाकर कंस चाटुकारिता और करुणापूर्ण जय-जयकारों के कोलाहल को राजगौरव से भरी हथेली दिखा-दिखाकर शान्त करने लगे थे'''। सन्तोष और मुसकान की एक कौंध उनके चेहरे पर दमदमायी, फिर कहा था उन्होंने—'आप सभी का स्नेहादर का स्वागत करता हूं मैं'''! उससे कहीं अधिक पितृ के इस निर्णय ने मुझे चिन्तित कर दिया है। मैंने तो विचारा ही नहीं था कि पूज्य महाराज सहसा ही राजकाज सम्हालने का यह महत् दायित्व मुझे सौंप देंगे'''पर अब उनकी यह आज्ञा मेरी परीक्षा है'''। आप सभी से सहयोग मिले—तभी उनकी आज्ञा का निर्वाह कर सकूंगा मैं'''।'

वसुदेव बुरी तरह सुलग उठे। एक दृष्टि कोने में चुप बैठे तमाशबीन की तरह हतप्रभ श्वफल्क पर पड़ी···लगा था कि वह भी बुरी तरह झुलस रहे हैं···। पर अजब है यह झुलसन···! मुरझाहट व्यक्त करने में भी असमर्थ···।

असहाय से उन सभी ने वह दृश्य देखा। और तभी प्रद्युम्न ने महाराज का संकेत पाकर उनके पास पहुंचकर आदेश लिया···अगले ही क्षण वह आदेश सभा मे गुंजरित हो उठा। प्रद्युम्न बोला था—'महाराज कंस की इच्छा है कि मगधराज के दूत को मथुरा गणसंघ की ओर से जा रहा सन्देश दिया जाये !'

अजब-सी धुमकी और बेचैनी बिखर गयी थी सभी ओर···सुषेण एक ओर चुपचाप बैठा था—यन्त्र की तरह खड़ा हो गया। राजा को प्रणाम किया।

कंस बोले—'कैसा विचित्र है यह संयोग···? जिस समय मगधराज का सन्देश आया, उसी समय पूज्य उग्रसेन ने मुझे मथुराधिपति बनाने का निर्णय लिया···। नये मथुराधिपति के नाते हम तुम्हारा हार्दिक स्वागत करते हैं दूत सुषेण।'

'महाराज की जय हो···! मैं आभारी हुआ।' दूत ने सिर झुकाया। वही यांत्रिक झुकाव-मुड़ाव।

मगधपति का मथुरा के प्रति प्रेम और वरद पाकर हम सभी को बहुत प्रसन्नता हुई है।' कंस आगे बोले थे—'मगध और मथुरा की मैत्री दो विशाल साम्राज्यों को केवल शक्तिशाली ही नहीं बनायेगी, अपितु एक-दूसरे के प्रति स्नेह-सम्बन्धों का उदाहरण भी बनेगी।'

सुषेण चुपचाप सुने गया···उसी तरह जिस तरह सारी सभा, सभाजन चुपचाप सुने जा रहे थे। जिस तरह सुषेण जानता था कि उसे क्या सुनना है, उसी तरह वे सब भी जान चुके थे कि उन्हें क्या सुनाना है।

महाराज कंस ने सम्पूर्ण सन्देश मे क्या लिखा, वह सब उन्होंने एक ही पंक्ति में सुना दिया था—'दूत···! हमारी ओर से मगधराज को सादर अभिवादन देते हुए यह राज-सन्देश दे देना···।' कहकर उन्होंने सेविका द्वारा एक स्वर्णथाल में रखे हुए सन्देश-पत्र की प्रति उठाकर सुषेण की

दिशा में बढ़ा दी थी···। सुषेण तीव्रगति से आगे बढ़ा। सन्देश थामा और उसे शीश से लगाया। 'जैसी आपकी आज्ञा, महाराज।'

वह पुनः अपनी जगह लौट आया था।

कंस बोले थे—'आज, इसी क्षण से मगध और मथुरा घनिष्ट मित्र हुए···। हम एक-दूसरे की सहायता और सेवा के प्रति वचनबद्ध हैं···।'

केशी, प्रद्युम्न, मुष्टिक आदि ने जय-जयकार की···! लयबद्ध उठीं कुछ और जय-जयकारें। पर इन जय-जयकारों के स्वरों में कितने स्वर सत्य थे और कितने विवश—निश्चित नहीं किया जा सकता था।

सुषेण ने यह सब भी सुना, पर जाने क्यों प्रसन्नता की मुद्रा प्रकटाते हुए प्रसन्नता अनुभव नहीं कर सका। लगता था कि यह अवश प्रसन्नता किसी न किसी दिन विस्फोट का कारण बनेगी···।

किन्तु ऐसा नहीं सोचना चाहिए उसे···। उसने अपने मन को जैसे बाध्य करना चाहा था कि वह अपनी सफलता पर प्रसन्नता अनुभव करे··· पर विचित्र होता है मन...? वह बहुत बार केवल मन न रहकर बुद्धि-विवेक से इतना जुड़ जाता है कि वह सब सहज स्वीकार नहीं करता जिसे कोई भावना या उत्तेजना स्वीकार करवा सकती है! सभा विसर्जित हुई।

सुषेण सन्तुष्ट हो गया था···। या सन्तोष जाहिर कर दिया था उसने।

□

सन्ध्या समय वसुहोम बहुतेक सूचनाएं लेकर उपस्थित हुआ। उस समय वसुदेव अपने निवास में रोहिणी के पास थे···सभा से लौटते ही रोहिणी ने प्रश्न किया था—'जो कुछ मैंने सुना है, क्या वह सत्य है स्वामी?'

'क्या···?'

'यही कि दुर्मति युवराज कंस ने असत्य प्रचार कर दिया है कि महाराज अस्वस्थ हैं···।' रोहिणी चिन्तित और व्यग्र थी। चेहरा किसी अज्ञात आशंका और चिन्ता से व्यथापूर्ण। जानती थीं कि यदि महाराज उग्रसेन पर विपत्ति आ चुकी है तब उनके पति भी विपत्ति में ही हैं···! और केवल वसुदेव क्यों, वे सभी प्रभावशाली यादव, जो मथुराधिपति उग्रसेन के

शुभेच्छु रहे हैं। गणसंघ के विचार में जिनकी आस्था रही है…।

'सम्भवत: सत्य है देवी…!' वसुदेव बोले थे। थके-से सिंहासन पर बैठ गये। रोहिणी समीप आ खड़ी हुई। पति की थकान और चेहरे पर लिखी दुश्चिन्ता पढ़कर अधिक ही व्यग्र हो उठी। कुछ अटकते शब्दों में पूछ लिया था—'इसका अर्थ तो यह हुआ शूरसुत कि दुरभिमानी और उदंड कंस आपको और अन्य सभी यादवपतियों को बन्दी बना सकता है?'

'अवश्य…!' वसुदेव ने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया था फिर एक पल रुके, कहा—'इस क्षण निश्चित नहीं कि क्या होगा? पर इतना निश्चित है कि विपत्तिद्वार पर वे सभी खड़े हुए हैं, जो गणसंघ की पद्धति और स्वतन्त्र चेतना में विश्वास करते थे।'

रोहिणी की चिन्ता सहसा आंसुओं में बदल गयी थी…स्वर रुंध उठा, 'तब…तब क्या होगा स्वामी? कुछ विचार किया आपने?'

'विचार कर रहा हूं, पर विचार के लिए भी समय शेष रहा है, अथवा नहीं—नहीं जानता! वसुदेव एक गहरा श्वास खींचकर आसन पर ही लेट रहे। रिक्त, भटकती-सी दृष्टि छत पर टिका दी—चुप रहे।

रोहिणी चरणों की ओर बैठ गयी। बहुत कुछ पूछना चाहती थी। सम्मति देने की भी इच्छा थी, किन्तु न तो स्वर ने साथ दिया, न ही शब्दों ने। मन जैसे किसी दलदल में समाने लगा था…छटपटाहट झेलती हुई-सी बैठी रही। लग रहा था कि भव्य प्रकोष्ठ और उसकी बहुमूल्य सज्जा सहसा विधवा की तरह सूनेपन से भर गयी है। उसकी जगह धीमे-धीमे उभरने लगा है कारागार का सन्नाटा…। कालिख में डूबा दिन…! और कभी न कटने वाली रात्रि।

इस रात्रि को अचानक एक स्वर ने तोड़ दिया था। सेविका उपस्थित हुई, *'प्रणाम मंत्रिवर…!'*

वसुदेव ने चौककर देखा।

'विशेष भेंट-कक्ष में नायक वसुहोम देर से प्रतीक्षा कर रहे हैं।' 'सेविका ने सूचना दी।

वसुदेव उठे। रोहिणी चुपचाप देखती रही। तीव्रगति से पति पार कर गये।



वसुहोम एक ओर चुपचाप खड़ा था। दृष्टि में चिन्ता। चेहरा उदास। वसुदेव ने जैसे ही भेंट-कक्ष में प्रवेश किया—उसने अभिवादन में सिर झुकाया।

उत्तर न देकर सीधा प्रश्न किया था वसुदेव ने—क्या समाचार है?'

'मगधराज का दूत प्रस्थान कर चुका है।' वसुहोम ने कहा।

'जन-प्रतिक्रिया?'

'सभी असन्तुष्ट हैं देव! अधिकतर लोग इस बात पर सहसा विश्वास करने को तैयार नहीं हैं कि महाराज उग्रसेन ने अस्वस्थ हो जाने के कारण सत्ता युवराज को सौंपी है।'

'यह तो हम भी अनुमान कर सकते हैं वसुहोम!'

'मगधराज की सेनाएं मथुरा के बहुत समीप तो नहीं हैं, किन्तु समाचार मिला है कि बहुत दूर भी नहीं हैं।' वसुहोम ने कहा था—'एक और विशेष समाचार है महाराज!'

वसुदेव ने दृष्टि उसकी आंखों में गड़ा दी थी।

'बड़ी संख्या में सेना और नगर-व्यवस्थापक संस्थाओं में पदोन्नतियां हुई हैं'''। कुछ जनपदों के राजा भी युवराज के समर्थक बन चुके हैं'''यह किस तरह, किस आधार पर हुआ है—यह ज्ञात नहीं हो सका।'

वसुदेव ने सुना...। लगा था कि सुनने योग्य अब कुछ नहीं बचा है।

वसुहोम कहे जा रहा था—'बहुतेक यादव सामंतों ने संगठित रूप से एकत्र होकर महाराज कंस से निवेदन किया था कि वह वृद्ध उग्रसेन से भेंट करना चाहते हैं, किन्तु महाराज ने स्वीकृति नहीं दी। उत्तर दिया गया कि वैद्यों ने भेंट न करने के लिए कहा है। पूर्ण विश्राम के लिए यह आवश्यक है।'

वसुदेव मुसकराये—पर लगा था कि अपनी ही बेबसी पर मुसकराना बहुत कष्टकर होता है। उससे कहीं अधिक कष्ट देता हुआ।

'सुना है कि अब वे यादव सामंत आपसे भेंट करना चाहते हैं।' वसुहोम ने कहा। एकदम चौंक गये थे वसुदेव—'मुझसे?'

'हां, महामन्त्री'''!'

सहसा टोक दिया था वसुदेव ने, 'तुम भूल रहे हो, वसुहोम'''। अब मैं महामन्त्री नहीं रहा हूं—यह पद उसी समय तक था जब तक कि महाराज उग्रसेन मथुराधिपति थे।'

वसुहोम चुप ही रहा'''लगा कि उसके चेहरे पर अंधेरा सघन हो गया है'''इतना सघन कि वसुदेव को देखकर भी देख नहीं पा रहा है वह।

और वसुदेव विचार कर रहे थे—''''यादव मार्गेश आपसे भेंट करना चाहते हैं'''!' यह चेतावनी थी उनके लिए। समाचार से अधिक चेतावनी'''! निश्चय ही ये वे सामन्त होंगे जो कंस के प्रति विद्रोही होते जा रहे हैं'''और उनको वसुदेव से भेंट का अर्थ होगा—कंस के प्रति वसुदेव का विद्रोह! घोषणा'''। एक पल के लिए सहम गये थे वह, किन्तु अगले ही पल स्वयं को सम्हाला—ठीक हुआ। राजपुरुष के लिए इस प्रकार मन को चेहरे पर व्यक्त करना ठीक नहीं रहा। उन्हें अपने भीतर से ही। किसी ने चौंककर सावधान कर दिया हो उन्हें'''।

वसुहोम अपने आदेश की प्रतीक्षा में खड़ा था। पर वसुदेव बोले थे—'इस क्षण तुम जा सकते हो वसुहोम'''! आवश्यकता हुई तो तुम्हें बुला लूंगा।'

'जैसी आज्ञा, प्रभु!' वसुहोम बाहर निकल गया।



वे शब्द जो कंस ने राजसभा में कहे थे—इस क्षण भी वसुदेव की आत्मा को उलीचे डाल रहे हैं—'आज···इसी क्षण से मगध और मथुरा घनिष्ट मित्र हुए···!' वसुदेव का मन हुआ था कि अपने पर ही नहीं, समूचे यादव कुलों पर हंसे···! थूक से भरी हुई हंसी···।

मित्र···? मगधराज जरासंध मित्र···? अपनी अन्धी राजशक्ति से किसी को भी नष्ट कर डालने मे समर्थ जरासंध के लोलुप स्वभाव का मित्र मथुरा···? विचित्र···। विचित्र ही तो है? भला मांसाहारी बाघ और सहज सरल हिरन में मित्रता होती है?

नहीं···! यह मित्रता नहीं—कृपा और दया के ऐसे जुड़े हुए हाथ हैं, जिन्होंने यादवों को ही नहीं सम्पूर्ण गणतंत्रीय विचारव्यवस्था को ही याचक बना डाला है। केवल दयायाचक···।

कैसी विडम्बना? जो हाथ मुक्ति और संवेदन का समुद्दान किया करते थे, सहसा पोखर का जल हाथ में लेकर खड़े हुए जीवंत होने का भ्रम पाल रहे हैं···। धिक्कार! कंस केवल पितृघाती नहीं, सिद्धांतघाती भी सिद्ध हुआ है···। अक्षम्य···! उग्रसेन को बंदी नहीं बनाया है उसने—सम्पूर्ण गणतंत्र को बन्दी बना लिया है। दासत्व थोप दिया है एक स्वतंत्र सत्ता पर।

इस दोष का दण्ड उसे अवश्य ही भोगना होगा··। तुरन्त नहीं तो फिर कभी। वसुदेव या किसी यादव वृष्णि या अन्धक सामंत अथवा राज-पुरुष से नहीं तो किसी जन-पुरुष से···। कोई जननायक अवश्य आयेगा जो मथुरा की इस लुप्त की गयी गरिमा को पुनर्जीवित करेगा। गणसंघीय विचार को पुनर्प्रतिष्ठा प्रदान करेगा···।

पर उस समय तकतो बहुत कुछ घट चुकेगा वसुदेव···? कंस की मदान्ध शक्ति चेतना का संहार ही प्रारंभ कर देगी···। विचार को ही नष्ट-भ्रष्ट कर दिया जायेगा। विश्वासों को चकनाचूर कर डालेगी उदंड कंस की राजव्यवस्था···।

लगा था कि कोई है जो उनके अपने भीतर से, उन्हें डरा रहा है···।

किन्तु डरेंगे नहीं वसुदेव···! जितने बड़े डर से सामना हो चुका है और जिसे सह लिया है, उससे घृणित सहने के लिए कौन-सा डर शेष रह

गया है ?

आहट हुई···वसुदेव मुड़े। सेवक उपस्थित था। दृष्टि अपनी ओर पाते ही धर्राने स्वर मे कहा था उसने...'महामंत्री की जय हो···! मथुराधिपति इसी क्षण भेंट करना चाहते हैं।'

वसुदेव ने सुना। कुछ पलों के लिए जड़ हो रहे। कंस का बुलावा···। क्या कहेगा वह···? या क्या करना चाहता है···?

बहुत सोचने का अवसर नहीं था—न ही समय। 'तुरन्त भेंट करना चाहते हैं' समाचार में हो यही शब्द थे। वसुदेव यंत्रवत् चल पड़े थे कंस के राजनिवास की ओर !



सब कुछ इतनी ही आसानी के साथ हो जायेगा—मानसी कल्पना भी नहीं कर सकती थी। जिस क्षण कंस को राज्याधिकार की सम्मति दी, उस क्षण केवल यही सोचा था कि राजकुमार अवश्य ही कुछ यादव राजाओं या सामन्तों के विरोध का सामना करेंगे···। हो सकता है कि उन्हें युद्ध भी करना पड़ जाये, पर वैसा कुछ नहीं हुआ था। यही नहीं, लगता था कि कभी कुछ हो सकता है | इसकी आशंका भी नहीं है।

प्रसन्न थी मानसी···! इसलिए और प्रसन्न थी कि उसने दोहरी सफलता पायी। मगधराज को तो सन्तुष्ट किया ही, अपरोक्ष रूप से ही सही—कठोर स्वभाव, वज्रपुरुष कंस को भी अपने मोहपाश मे जकड़ लिया···।

समाचार मिला था बकुल से। मथुराधिपति उग्रसेन जिस समय कंस के विशिष्ट सेवकों द्वारा बन्दी बनाये जाकर कारागृह भेजे जा रहे थे, उसी समय बकुल आ पहुंचा था। मानसी सो नहीं पा रही थी···लगता था कि रात और उसके किसी भी पल-प्रहर मथुरा में कोई न कोई राजनीतिक उथलपुथल हो सकती है···। यों मानसी का उस उथलपुथल से किसी तरह का सम्बन्ध हो, अथवा वह जोड़ी जाये—विचार में भी नहीं था, इसके बावजूद वह उद्विग्न रही थी। क्यों नहीं सो सकी थी···? उसने स्वयं सोचा। तिस पर उद्विग्न होना ? यह तो और भी आश्चर्यजनक···।

पर मानसी को लगा था कि न कुछ आश्चर्यजनक है, न असहज···। पूर्णतः सहज है। नितांत स्वाभाविक। इसलिए कि मानसी, इस सारी

से किसी के जाने हुए भले ही न जुड़ी हो, पर स्वयं तो जानती थी कि जुड़ी है ?

'निश्चय ही नहीं ।' मन के किसी तार ने अनायास ही झनझनाकर मानसी का तर्क दबोच लिया था—'यह सच नहीं···!'

'तब, तब क्या है सच ?' न चाहते हुए भी वह जैसे ही अपने को कुरेदने लगी ।

'सच यह है कि मानसी कंस को सम्मोहन जाल में जकड़ते-जकड़ते स्वयं भी उसी जकड़न में जकड़ गयी है ! वह—वह प्रेम करने लगी है कंस से । उससे भी आगे समर्पिता हुई है उनकी···। कंस की हर सफलता-असफलता, शुभाशुभ मानसी का अपना । उनकी वेदना, मानसी की वेदना । उनका उल्लास, मानसी का उल्लास ।

लगता है कि उसके अपने ही भीतर उमड़ा विचार अचानक किसी ने ठहाकों के साथ दबोच लिया है···केवल दबोचा नहीं—कुचल डाला है···। इस दमन में गूंज रही है कुछ गालियां, धिक्कार—'मूर्खा···! कल्पनासुख में डूबने वाली एक वीरांगना···। क्या जानती नहीं तू कि मथुराधिपति कंस या उस मान-सम्मानवाले व्यक्ति के लिए तुझ जैसी स्त्री या स्त्रियां केवल मनोरंजन हैं···? केवल सभा-सभाजनों के सन्मुख सम्मान मे अक्षत्-रोली के भाव से प्रस्तुत की जानेवाली वस्तुएं···। इससे अधिक कुछ नहीं ?'

मानसी ने अपने भीतर गुरझाहट की पहली बला ढालनेवाली विद्युत तरंग अनुभव की···फिर यह विद्युत-तरंग धीमे-धीमे उसके संवेदन और विश्वास के साथ-साथ सपनों को झुलसाती अनुभव होने लगी···मन हुआ, कह दे—'नहीं···। नहीं···। मैं मगध के राजमंच की एक साधारण अभिनेत्री भले ही होऊं किन्तु मैंने अपनी भावना-शरीर केवल एक ही को समर्पित किये हैं···केवल कंस की अंकशायिनी हुई हूं—वह भी सम्पूर्ण निष्ठा और भावना के साथ ।'

लगा था कि इस उत्तर से अपने भीतर की झुलसन को शान्त कर सकेगी मानसी—पर पल भर में ही अनुभव हो गया था——व्यर्थ रहा विचार···। उस झुलसन को दबा पाने मे घोर असमर्थ···। ठहाके और

अधिक तीव्र और गहरे हुए, कहीं और अधिक नुकीले—होकर मानसी के अपने ही आत्म को रेशे-रेशे कुरेदने लगे…। झूठ…। यदि नहीं तो अपने प्रति छल…। इससे अधिक इस विचार का न कोई रूप है, न चेहरा !

बाहर से जय-जयकार उठने लगे थे…। इन जय-जयकारों के बीच अनेक बार मानसी ने घोषणाएं भी सुनी थी—'नगरवासियों, प्रजाजनों के नाम राज-सन्देश…।'

'आज के साथ मथुराधिपति का दायित्व युवराज कंस ने सम्हाल लिया है…। अब वही जन-न्याय करेंगे, उन्ही की सत्ता से यादव गणसंघ चलेगा ! उन्हीं की आज्ञा धर्म और न्याय कहलाएगी !'

मानसी ने कुछ देर चुपचाप बैठे हुए सुनी थी ये सूचनाएं, फिर दौड़ी हुई झरोखे में जा पहुंची थी—दृश्य देखने का अजब-सा कौतूहल और सुखानुभूति की इच्छा हुई थी उसे !

दृश्य देखा, आनन्द भी हुआ—सुख भी मिला…। कंस की उपलब्धि, मानसी को अपनी उपलब्धि लगी थी…पर जिस क्षण अपने ही भीतर तर्क के थप्पड़ों ने चेहरे पर प्रहार किया, उसी क्षण से मुरझाहट प्रारम्भ हो गई।

राजनिवास का हर प्रहरी बदला हुआ था। हर चेहरा नया। हर आंख सतर्क और सावधान···। जिस समय, रथ से उतरकर वसुदेव मथुराधिपति के जाने-पहचाने मंत्रणा-कक्ष की ओर बढ़े, उस समय उनकी ओर हर प्रहरी की सतर्क और चौकन्नी आंखें ठहरी हुई थीं। कुछ देर तक वसुदेव अपने ही भीतर ग्लानि का अनुभव करते रहे···छि:···। मन ने कहा था—'कैसी अपमानस्पद स्थिति झेलने को बाध्य हुए हैं वह···? जिन प्रकोष्ठों, परकोटों और कक्षों के भीतर उनकी अगवाई सुनकर शीश झुके रहते थे, उनमें थूहर के कांटों जैसी आंखें बिंधी हुई हैं···हर आंख बढ़ते चरण में लगती हुई···पीड़ा से भरी कराह होंठों से विद्रोह करने को व्यग्र···।'

इच्छा हुई थी कि राज्यादेश की अवहेलना कर दें। लौट पड़ें अपने निवास को। धिक्कृत इस जीवन पर···। अपने ही सम्मान और सत्ता पर ऐसा कीचड़ उछलते हुए झेलना पड़ रहा है···।

किन्तु नहीं। ऐसा नहीं करेंगे वह···। कर नहीं सकते! राजनीति-धर्म बाध्य करता है उन्हें। समयानुकूल चलकर समय को अपने अनुकूल बनाना ही राजनेता का धर्म···। उस बीच जो भी सहना पड़े, सहेंगे वह!

वसुदेव अपने आपको घोंटे हुए चले गए। मंत्रणा-कक्ष पर पहुंचकर सूचना भिजवा दी थी—'महाराज से कहो, वसुदेव आ पहुंचे हैं।'

सैनिक जिस गति से गया था, उसी गति से लौटा। सप्रणाम निवेदन किया—'आप ही की प्रतीक्षा कर रहे हैं, मथुराधिपति!'

वसुदेव ने कक्ष में प्रवेश किया। कंस सामने थे। युवराज नहीं, मथुराधिपति कंस···। उन्हें देखते ही मुसकराए, उठे, वसुदेव आगे बढ़ सकें—

इसके पूर्व ही आसन से आगे बढ़कर दोनों बाहें फैलाए हुए उन्होंने वसुदेव का स्वागत किया, बोले, 'आपके आगमन से आनन्दित हुआ स्वजन'''। पधारिए'''। आसन ग्रहण कीजिए!'

वसुदेव एक पल के लिए चकित खड़े रह गए। कंस का वह मुसकराना, आगे बढना, स्वागत में बाहें फैलाना'''सब कुछ यदि नाटकीय नहीं था तो विश्वसनीय भी नहीं था। लगा कि उद्दंड कंस भी राजनीति की चौसर पर सफलता के साथ चाल खेल सकते हैं'''। यह रूप तो कभी देखा ही नहीं था उनका। एक साथ आनन्द और चिन्ता घर कर गये मन में। कंस का यह व्यवहार सच हो या नाटकीय—पर चौंकाने वाला है'''। ऐसे छल और अभिनय प्रवणता से भरी राजनीति को झेलना सहज नहीं होगा! वसुदेव ने तुरन्त समझ लिया था।

और चिन्ता'''? चिन्ता यह कि इस राजनीति के रहते, वसुदेव या उनकी तरह के सरल मन लोग कितने दिन विगत के कंस को याद रख पायेंगे'''?

कंस उसी तरह मुसकरा रहे थे। दृष्टि में विश्वास, उससे कहीं अधिक सतर्कता। आसन पर बैठने के बाद बोले थे—'मैंने आपको विश्राम के समय कष्ट दिया, पर क्या करूं—स्थिति ही ऐसी आ पड़ी थी। आप तो जानते ही हैं कि राज-काज और व्यवस्था-प्रबन्धों का अनुभव नहीं है मुझे'''आप जैसे विद्वानों का सहयोग पाए बिना यादव गणसंघ के शुभार्थ कैसे, क्या कर सकूंगा—यही विचार कर आपसे सहयोग मांग रहा हूं'''।'

वसुदेव भीतर-ही-भीतर बौखलाकर रह गए थे। तुरन्त निश्चय नहीं कर सके थे, क्या कहें? पर इतना समझ चुके थे कि तीव्रबुद्धि कंस उनसे सहयोग याचना केवल इस कारण कर रहा है क्योंकि उसे यादव गणसंघ में सत्ता की जड़ें फैलाने का यथोचित अवसर चाहिए'''। वसुदेव को निरुत्तर पाकर कंस ने तुरन्त ही शब्द-स्वर बदल दिया। बोला, 'आपके संकोच का कारण समझ पा रहा हूं, विद्वश्रेष्ठ'''। संभवतः बहुत से बन्धुओं की तरह आपको भी यह रुचिकर नहीं लगा होगा कि हम पितृ के रहते सत्ताधीश बनें, किन्तु आपको तो ज्ञात ही है कि पूज्य उग्रसेन शक्ति, सामर्थ्य और निर्णयात्मक दृष्टि से मथुरा के शुभार्थ निर्णय नहीं कर पा रहे थे'''।

जरासन्ध की अतुलनीय शक्ति से जूझने का अर्थ होता है जन-नाश···। पराजय तो निश्चित ही थी···ऐसी स्थिति में बाध्य होकर ही हमने वह कठोर निर्णय लिया···प्रियकर तो हमें स्वयं भी नही लगा, पर किया भी क्या जा सकता था···? मथुराधिपति पर केवल मथुरा का नही सम्पूर्ण गणसंघ के शुभाशुभ का दायित्व-धर्म है।'

वसुदेव इस बीच निश्चय कर चुके थे—क्या कहना और क्या करना उचित होगा। कहा था—'मैं संकोचग्रस्त नही हूं, महाराज···। केवल विचार कर रहा हूं कि जो घट चुका है, उसके कुप्रभाव को नष्ट करने के लिए आपकी ओर से क्या किया जाना उचित होगा···। यह तो आप भी जान-समझ चुके होंगे कि जनपद में इस सबकी बहुत विश्वसनीय प्रतिक्रिया नही हुई है···'

कंस बोले नही—केवल देखते रहे, जैसे वसुदेव के हर शब्द को कसौटी पर कस रहे हों। कैसी तीखी, कुरेदती—अन्तर तक छीलती हुई आंखें थी उनकी···?

वसुदेव जानते थे—यह होगा। कहा—'राजन्···! अब महत्त्वपूर्ण यह नही रहा है कि मगधराज के दूत को क्या उत्तर दिया गया, क्या नही? महत्त्वपूर्ण यह है कि जन-मानस को आपके प्रति विश्वस्त किया जाए···।'

कंस की आंखों मे चमक पैदा हुई। वसुदेव ने तुरन्त समझ लिया कि उनकी बातों ने दुर्मति राजा को प्रभावित किया है। पर प्रश्न भी नही हुआ कंस की ओर से।

वसुदेव कहे गए—'मेरी सम्मति में तो इस समय, जितने शीघ्र संभव हो सके मथुरा और विभिन्न यादव, वृष्टि अन्धक वंशियों के जनपदों को अपने विश्वास में लाना उपयुक्त होगा मथुरापति···। यही समयसूचकता रहेगी!'

एक गहरा श्वांस लिया कंस ने। कहा, 'मैं आपकी बुद्धि, ज्ञान और सम्मति पाकर प्रसन्न हुआ वसुदेव···। निस्सन्देह आपने जो कुछ कहा है, वह उचित है। अब यह भी बतलावें कि किस तरह, किन साधनों से जन-मानस की प्रतिक्रिया को अपने पक्ष में किया जा सकता है! हमारे पास शक्ति है, समृद्धि है और उससे कहीं अधिक है कठोर प्रशासन। क्या इस

माध्यम से…'

'कदापि नहीं राजन्…! जन-साधारण को दमन या आतंक से प्रभावित करके चुप अवश्य किया जा सकता है—उन्हें विश्वस्त नहीं किया जा सकता…। राज्यशुभ में जनता का आतंकित होना नहीं, विश्वस्त होना अधिक महत्वपूर्ण होता है—उसी के उपाय करें…'

'…किन्तु कैसे…?' कंस सहसा प्रश्नहीन हो गये थे—आशाभरी निगाहें वसुदेव के चेहरे पर ठहरी रह गयी थीं…

और वसुदेव चुप। जानबूझकर हुए या अजाने—कहा नहीं जा सकता, पर सन्नाटा गहरा गया था वातावरण में।

□

वसुदेव शान्त थे। गम्भीर भी। इस तरह जैसे विचार कर रहे हों। कंस उनकी ओर टकटकी लगाये देख रहा था। वसुदेव ने एक दृष्टि डाली—समझ लिया था कि उनकी ओर से वह विश्वस्त हो गया है। सदा के लिए नहीं तो कम-से-कम इस क्षण के लिए अवश्य ही निश्चिन्त दीख रहा था…

वसुदेव ने वार्तारम्भ किया—'मेरे विचार में इस समय केवल यह उचित होगा कि महाराज उग्रसेन के समय के विशेष मंत्री, सलाहकार जनपद के विभिन्न अंचलों की यात्रा करें। प्रमुखों से भेंट करके उन्हें यथासम्भव विश्वास में लाने की चेष्टा करें…कहें कि समयानुकूल जो किया गया, वही राजनीतिक दृष्टि से उचित था…। मगधराज को व्यर्थ ही चुनौती दे डालना—मृत्यु को आमंत्रित करने की तरह होता। वीरत्व, बुद्धि के बिना व्यर्थ होता है—यही कुछ उन्हें समझाया जाये…'

कंस की जो दृष्टि कुछ समय पूर्व धुंधला गई थी, फिर से आशा में चमक उठी। निस्सन्देह…! इस समय वसुदेव की सम्मति ही योग्य और उचित है…! पल भर में राजा ने निर्णय लिया। कहा—'आप महाराज उग्रसेन के लिए भी सबसे योग्य और विद्वान नीतिज्ञ रहे हैं—मेरी इच्छा है कि आप ही महामन्त्रिपद स्वीकारें…। आपने जो विचार व्यक्त किया है, उससे मैं पूर्णतः सहमत हूं। वही करें…आगे भी आपके निर्णयानुसार गणसंघ का संचालन-प्रशासन हो, यही हमारी इच्छा है!'

'जैसी आपकी इच्छा, राजन्…!' वसुदेव ने शान्त स्वर में उत्तर दिया। न चाहते हुए भी अपरोक्ष रूप से उत्तर में हर्ष व्यक्त किया था, स्वर में आनन्द…इस तरह जैसे कृतार्थ हुए हों।

कंस ने आसन छोड़ दिया। कक्ष में चहलकदमी करते हुए कहा था—'मेरे विचार मे कल से ही आप इस शुभकार्य को स्वय सम्हाल लें…राज्य की ओर से सम्पूर्ण गौरव-गरिमा सहित विभिन्न जनपदों की यात्रा करें…'

'आज्ञा शिरोधार्य है महाराज!' वसुदेव भी उठ पड़े थे।



मानसी ने मन की उहापोह से मुक्ति पाकर दासियों को बुलवाया—शृंगार की आज्ञा दी। फिर स्वयं तैयार हुई…

भवन को विशेष रूप से सज्जित किया गया था। अब इस भवन में युवराज कंस के नहीं, महाराजाधिराज मथुरा के चरण पड़ेंगे…। मन विभिन्न कल्पनाओं से भरा हुआ था। कभी लगता कि राजा राजगरिमा की मन्द-मन्द चाल में पधारेंगे, कभी लगता कि उत्साही प्रेमी की भांति कंस कक्षद्वार मे आते ही तीव्रगति से मानसी को बांहों में भरकर जकड़ लेंगे। उनके चेहरे और अंग-अंग में हर्षोल्लास की मादकता समाई होगी। स्वर में आनन्द होगा…

और कभी लगता कि हो सकता है महाराज के नाम पर विशेष अनुचर सूचना लेकर आये—'देवी…! आपको स्मरण कर रहे हैं मथुराधीश!'

मानसी के भीतर पुलक उठ रही थी…ज्वार-भाटे की तरह! पल-पल नए-नए कद वाले उतार-चढ़ाव लेती हुई। दृष्टि हर आहट पर चपलता के साथ दांये-बांये मुड़ती हुई। शरीर का हर हिस्सा फूलों के ढेर की तरह कल्पनाओं के झोंके खाकर धीमे-धीमे हिलता हुआ! सब कुछ सुखद, सब आनन्द भरी मादक हवाओं में झूमता हुआ-सा!

आशी ने क्रमशः हर गतिविधि के समाचार दिए थे—महाराजाधिराज को पल भर भी अवकाश नहीं मिल पा रहा है। गणसंघ के सामन्तों से लेकर जनमंच तक विश्वास बटोरना पड़ रहा है। छोटा-मोटा उलटफेर तो हुआ नहीं है। एक तरह से भरत खंड की राजनीति का एक पूरा अध्याय ही बदल गया है…।'

मानसी ने शान्ति और धैर्य के साथ सुना था सब। उससे कहीं अधिक समझा। यह सब होगा—पूर्वनिश्चित था। उससे भी अधिक था परिणाम से कुछ घटने की आशंका ! पर यह सोचकर गहरी शांति मिली थी—वैसा कुछ नहीं घटा। अब तक सब कुछ सहजता के साथ चल रहा था···पर यह सहजता शांतिपूर्ण तूफान की भी हो सकती है। बकुल और सुषेण गुप्त भेंट में बतला गए थे···

इस सबके बावजूद मानसी को कंस की प्रतीक्षा थी। थके-बेचैन मन को हमेशा ही मानसी के कोमल स्पर्शों और मृदु वचनों की जलधारा से शांत करते आये हैं। अब भी उसी की आवश्यकता होगी उन्हें। राजनीति-चक्र के उलटफेरों से भरे समय में जैसे ही अपने लिए कुछ क्षण पा जायेंगे—मानसी उनके मानस में उभरेगी और तब या तो चरण मुड़ पड़ेंगे इस ओर या फिर मानसी को ही एक विह्वल बुलावा आ पहुंचेगा···

कैसे क्या करना होगा उस क्षण···? वह आयें या बुलावा आये—दोनों ही स्थितियों के लिए मानसी को तैयार रहना होगा। कक्ष की एक-एक वस्तु को जांचा-परखा, एक-एक कोने-कातर को निहारा···हर ओर स्वच्छता और सौन्दर्य झलकना चाहिए ! उससे कहीं अधिक मन की व्यग्रता को शान्ति देनेवाले सुखद वातावरण की सृष्टि रहे ! महाराजाधिराज कंस का इससे श्रेष्ठ स्वागत मानसी क्या कर सकेगी···?

सारा दिन इसी तरह कट गया था···फिर सांझ झुकी। पल-पल व्यग्र मानसी स्वयं को संजोये-संवारे हुए इस विश्वास में मन को प्रफुल्लित रखती आयी कि किसी भी क्षण कंस आ सकते हैं या उनका सन्देश···किन्तु वैसा कुछ नहीं हुआ···! जिस तरह दोपहर सन्नाटे से भरी बीती थी, उसी तरह सांझ अजब-सा बोझ लिये मन और माथे पर उतर आयी···

फिर हुआ रात का पहर···दीप जले, झालरों की तरह आशाएं पुतलियों को अधिक व्यग्र करती हुई प्रतीक्षा में झिलमिलाने लगीं···पर कंस ?

वह नहीं आए—न आया कोई सन्देश ! इस बीच कितनी बार, अकारण ही आशी को बुला लिया था, याद नहीं। पुकार बैठती और जब आशी सामने आ खड़ी होती तो जैसे कहने के लिए अपने ही भीतर कुछ खोजना पड़ता···फिर अन्त में खालीपन पाकर कहती—'कुछ नहीं, आशी···। तू

विश्राम कर !'

आशी गहरा श्वांस लेकर लौट जाती···यह भी समझ रही थी मानसी की व्यग्रता···। एक बार बोल पड़ी थी, 'देवी, स्वीकृति दें तो एक निवेदन करूं ?'

'हूं ?' जैसे चौंककर पूछा था मानसी ने, 'कह···? क्या बात है ?' आप व्यर्थ ही व्यग्र हो रही हैं···'

मानसी ने बेचैनी से उसे देखा।

कुछ क्षमायाचना करते-से स्वर में उत्तर दिया था आशी ने—'चिंतित न हो, देवी···। निश्चय ही महाराज कंस राजनीतिक उलटफेर की व्यस्तता में व्यस्त हैं। इस क्षण तो सुध-बुध खोये हुए होंगे·· सुना है महामन्त्री वासुदेव गणसंघ में बहुत प्रभावी हैं···राजा उन्हीं को किसी तरह पक्ष में करने का प्रयत्न कर रहे हैं···'

मानसी ने सुना। मन हुआ था कि आशी के इन शब्दों से अपनी छटपटाहट को कम कर लें—पर लगा वैसा हो नहीं सकेगा। मन-स्वर उसी तरह उदास रहे। औपचारिक स्वर में कह दिया था—'हां, सम्भवतः तू ठीक ही कहती है···'

मानसी चुप हुई तो आशी लौट गई। शब्द अब भी गूंजते हुए से लगे ···फिर अपने को ही कुरेदता प्रश्न अधिक गहरी गूंज के साथ मन में घुमड़ आया था—'क्या सच ही ऐसा होगा···? कंस सत्ताधिपति होते ही कहीं मानसी को बिसरा तो नहीं बैठेंगे ?'

बहुत शक्ति से चाहा था—अपने ही भीतर एक शक्ति पैदा करें और नकार दें इस तर्क को···।

किन्तु न नकार सकी, न स्वीकार सकी। उसकी जगह मन सिर्फ उलझे हुए रेशम की तरह अनसमझा-अनजाना रह गया।

रात का पहला पहर भी बीतने लगा था···सेविका ने आकर पूछा था, 'भोजन तैयार है देवी ?'

मानसी ने उत्तर दिया—'नहीं, इस क्षण इच्छा नहीं है !'

□

कंस सचमुच बहुत व्यस्त थे। उनसे कहीं अधिक चिन्ताग्रस्त और

व्यप्र! वसुदेव को अवश होकर महामन्त्रीपद पर लाना पड़ा था। उन्हें वृष्णिवंशी गणसंघ के प्रभावशाली लोग थे। वसुदेव उनके प्रमुख। उनका अस्तित्व नकारना असम्भव था। बहुत सूझबूझ के बाद निर्णय लिया था कि उनके प्रभाव का अपने पक्ष में लाभ उठायें। केशी और प्रद्युम्न जैसे प्रभावी व्यक्ति पहले ही साथ आ चुके थे—वसुदेव का सम्पूर्ण समर्थ गणसंघ की सत्ता में अनायास ही कोपंल की तरह उग आए कंस को गहरी जड़ें दे सकता था···। जिस क्षण उनसे भेंट करने बुलाया उस क्षण कंस को विश्वास नहीं था कि वसुदेव इतनी सहजता से उनकी सत्ता स्वीकार लेंगे, पर अघटित घट गया। इसे ईश्वर की कृपा ही समझा था उन्होंने···किन्तु मन फिर भी सहज नहीं। लगता था कहीं कुछ ऐसा अवश्य घट रहा है, जिसे देखते हुए भी समझ नहीं पा रहे हैं वह···।

वसुदेव भोर के साथ ही राज्यादेश के अनुसार गणसंघ के विभिन्न क्षेत्रों में राजपुरुषों से भेंट के लिए चल पड़े थे···जो प्रस्ताव उन्होंने किया था, वह गलत नहीं था। निस्सन्देह उन्हें वृष्णि, अन्धक और यादवों का समर्थन चाहिए था···और यह समर्थन प्रभावशाली व्यक्तियों से भेंट किए बिना सम्भव न था···।

फिर भी लगता था—कुछ छूट रहा है? क्या? समझ से बाहर···। रात देर तक जागे। बहुत सोचा, बहुत करवटों विचार किया—पर हर बार अनुभव हुआ जैसे सिरा हाथ में होते हुए भी रह-रह कर मस्तिष्क की तरंगों से फिसल जाता है! और सब कुछ रहस्यमय हो रहता है···। वह सब—जो नहीं समझा जा रहा है! जो देखकर भी पहचान में नहीं आ रहा है!

जैसे-तैसे रात कटी, फिर भोर के साथ ही आशंका ने मन घेर लिया! क्या है वह जो दीख कर भी दीखता नहीं···?

सम्भवत: कंस के अपने मन की शंका है वह···। उत्तर मिला। पर नकार दिया—उंहुं! केवल यह नहीं। कुछ और है!

क्या हो सकता है?

सम्भवत: विश्वासघात का भय!

लगा था कि यह हो सकता है। मन ने कहा था—'तुम ने भी तो

विश्वासघात ही किया है राजपुत्र···। पिता से ही नहीं, सम्पूर्ण गणसंघ से ···। यह विश्वासघाती स्वभाव ही है जो अब तुम्हारे भीतर पैठ गया है—अतः तुम्हें भी सदा इसी से भय रहेगा ! इस समय भी वही भय काट रहा है···।'

अपना ही उत्तर, अपने को ही सहन नहीं हुआ। न, यह बात नहीं है···। ऐसा नहीं हो सकता ! यह तो वहम है कंस का। व्यर्थ-सा विचार !

तब क्या है ?

कुछ नहीं है !

नहीं—कुछ अवश्य है !

न तो मन ठीक तरह व्यवस्थित हो पा रहा है, न सहज। इसके विपरीत उत्तेजना से आकुल ही होता जाता है। निरन्तर···।

कुछ देर हथेलियाँ मसलते हुए कक्ष में घूमते रहे—सहसा पुकार लिया था उन्होंने—'कोई है ?'

सेवक उपस्थित हुआ।

कंस ने आज्ञा दी थी—'सेनापति केशी को इसी क्षण बुलाओ !'

सेवक जाने के लिए मुड़ा, उसी व्यग्रता में रोक दिया था उसे—'नहीं, तनिक रुको !

वह पत्थर की शिलावत् मुड़ गया। भयभीत, सहमा हुआ-सा नये राजा को देखने लगा। जानता है बहुत कठोर और वज्रहृदय है मथुराधिपति। रक्तसम्बन्ध को भी महत्वहीन समझा है उन्होंने, तब यह बेचारा दास ठहरा ! इसका कैसा अस्तित्व···। डर रोम-रोम में भर गया।

कंस ने धीमे से होंठ काटा, फिर कहा—'चित्रसेन को भेजो !'

'जैसी आपकी आज्ञा, राजन् !' कंपकंपाते स्वर में उसने कहा, तीव्रगति से मुड़ा—फिर इस तरह भागकर बाहर निकला जैसे यम से छूटने को आत्मा व्याकुल हो उठे···।

कंस फिर से चहलकदमी करने लगे। थोड़ी देर बाद चित्रसेन उपस्थित हुआ। सिर झुकाया, कुछ कहना चाहा, तभी कंस बोल पड़े थे—'सुनो, चित्रसेन !'

'आज्ञा देव ? वह आगे बढ़ आया। एकदम समीप। कंस के स्वभाव,

मुद्रा, दृष्टि सभी को पहचानता है वह। छुटपन से लेकर अब तक उनकी सेवा में रहा है। शरीर की हर चेष्टा से समझ सकता है कि कंस के भीतर क्या घट रहा होगा'''क्या होंठों से बाहर आएगा।

'वृष्णिश्रेष्ठ वसुदेव आज प्रातः ही विभिन्न जनपदों और अंचलों की ओर गये हैं।' कंस ने कहा। चित्रसेन की ओर देख नहीं रहे थे वह—लगता था कि कहीं दूर, सम्भवतः वसुदेव को ही यात्रा करते देख रहे हैं'''बोले—'हमारी इच्छा है कि विश्वस्त व्यक्तियों से उस हर क्षेत्र में सम्पर्क साधा जाए, जिनमें वसुदेव पहुंचेंगे, विभिन्न ग्रामों, क्षेत्रों के मुखियों से भेंट करेंगे'''

'जैसी आपकी इच्छा, महाराज !' चित्रसेन ने कहा और कंस ने आदेश पूरा कर दिया—'वसुदेव क्या चर्चा करते हैं, किस तरह मिलते-जुलते हैं यह सारी सूचनाएं हमें तुरन्त मिलती जानी चाहिएं !'

चित्रसेन ने शीष झुकाया—मुड़ गया।

कंस गहरा श्वांस लेकर पुनः विचारमग्न हो गए।



चले तब रोहिणी को साथ ले लिया था। गर्भवती थी वह। आशंकित भविष्य को महामन्त्री वसुदेव की दृष्टि दूर-दूरागत तक देख पा रही थी। कंस की राजलिप्सा और शक्ति आराधना का यह क्रूरतापूर्ण युद्ध यहीं समाप्त नहीं हो जाएगा—वह दूर, बहुत दूर जायेगा !

वसुहोम रथ हांक रहा था। कुछ सेवक रथ के आगे-पीछे चल रहे थे। सभी कंस के लोग एकमात्र वसुहोम ही था, जिस पर सम्पूर्ण विश्वास सौंपा जा सकता था। यही नहीं, उसके सामने अवसर कुअवसर अपने भीतर धड़कते पीड़ा के ज्वालामुखी को खोल भी देते—तो लावा बाहर नहीं जा पाता ! उसे लेकर निश्चिन्त थे। बाल्यावस्था से वसुदेव के साथ रहा था वह खेला, पढ़ा-लिखा भी। महामन्त्री पद पर पहुंचे, तब भी वसुहोम को ही अपने सबसे पास रखा बुद्धि भी तीव्र थी उसकी। समयानुसार निर्णय लेने और चेहरे के भाव सन्तुलित रखने की आत्मशक्ति भी थी उसके पास। वसुदेव[1] ने उसके सभी गुणों का मूल्यांकन किया और जिस तरह मूल्यांकन

१. वसुदेव की तीन पत्नियां कही गई हैं—भद्रा, रोहिणी और मदिरा। देवकी, कंस के राज्यारूढ़ हो जाने पर वसुदेव से विवाही गयीं।

हुआ, उसी तरह वसुहोम निबाहुता भी आया।

मथुराधिपति कंस का आदेश था—'मथुरा गणसंघ के प्रभावशाली व्यक्तियों, प्रमुखों, और क्षेत्राधिपतियों से भेंट करें—कंस के लिए समर्थन लें!' सुझाव स्वयं वसुदेव ने दिया था। किस तरह, अचानक यह विचार कौंधा और त्वरित बुद्धि ने काम किया—वसुदेव स्वयं ही नहीं जानते। पर इतना जान रहे थे कि उस क्षण वह सब कहकर उन्होंने समझदारी की थी। ऐसे ही जैसे किसी हिंस्र पशु का आहार होते-होते उसकी मानसिकता को बदल दिया हो···। जिस क्षण महाराज उग्रसेन को कारावास मिलने की सूचना पायी थी—उसी क्षण समझ चुके थे कि अगला नाम वसुदेव का ही होगा···। कंस भलीभांति जानता है—महाराज उग्रसेन के बाद सर्वाधिक प्रभावशाली व्यक्ति हैं वसुदेव! नीतिज्ञ भी, विद्वान भी!

जब बुलावा आया, तब भी यही समझा था कि सब समाप्त हुआ, किन्तु उचित समय पर जिस विद्युतगति से बुद्धि ने करवट ली और कंस को वश किया—वह अपने आप पर चमत्कृत हो उठे थे!

और अब सोचने लगे थे—कब तक चल सकेगा यह बुद्धिजाल? कब तक दुर्मति कंस को सम्हाले रह पायेंगे वह!

लगता था—बहुत दिन नहीं। एक न एक दिन कंस की क्रूरबुद्धि, वसुदेव को अपने से असहमत पाकर उन्हें वहीं पहुंचा देगी जहां कि महाराज उग्रसेन हैं···। और केवल उग्रसेन ही क्यों—उनके अन्य विशेष अनुचर भी!

उग्रसेन को कारावास पहुंचाते ही कंस ने विश्वस्त सेवक-सेविकाओं तक को एक-एक कर कैद कर लिया था···। यह मात्र वसुदेव का सौभाग्य था कि कंस का दुर्भाग्य···। वसुदेव मुक्त घूम रहे हैं···केवल मुक्त नहीं—महामंत्रीपद पर भी बने हुए हैं!

रोहिणी शान्त बैठी थी। सिर झुका हुआ। यह समझना कठिन कि आगत के प्रति चिन्ताग्रस्त हैं, अथवा वर्तमान के प्रति आनंदित···? सहसा वसुदेव बोल पड़े थे—'*देवी?*'

रोहिणी ने सिर उठाया—पति की ओर देखा। लगा जैसे उनकी

दृष्टि में बैठा शून्य बहुत कुछ कहता दीख रहा है···प्रश्नों और चिन्ताओं से भरा एक सागर···। पलकें लहरों की तरह थरथराती हुई, पुतलियों पर चमकते जल की एक परत···।

बोली कुछ नहीं।

प्रश्न वसुदेव ने ही किया—'क्या विचार रही हो रोहिणी ?'

कुछ विशेष नहीं, स्वामी···। 'रोहिणी ने भर्राये, आकुल स्वर में उत्तर दिया था—'सोच रही हूं कि आपने अनायास मुझे अपने साथ लेकर गणसंघ यात्रा का निर्णय क्यों कर लिया ?'

वसुदेव मुसकराये। मन ने टोका था उन्हें—क्या सचमुच ही मुसकराये हैं? या इस मुसकराहट के लिए उन्हें चेष्टा करनी पड़ी है। कहा—'मथुरा के राजनीतिक-चक्र ने ही मुझे इस निश्चय के लिए बाध्य किया है देवी···।'

रोहिणी के माथे पर बल पड़ आये। संभवतः सोचने लगी थी—राजनीति-चक्र से उनका क्या लेना-देना? वह कहां आती हैं बुद्धि और छल-प्रपंच के इस मायाजाल में···? राजभवन में रहने वाली महिलाओं को भी यह राजचक्र प्रभावित करता है क्या···? दृष्टि में पुनः अजानी व्यग्रता उभर आयी, जैसे प्रश्न किया हो—कैसा राजनीति चक्र···? और उससे मेरा क्या मतलब ?'

वसुदेव ने शान्त, किन्तु धीमे स्वर में कहा—'तुम गर्भवती हो देवी···। मैंने विचार किया कि मथुरा की राजनीतिक अनिश्चितता में तुम्हें तुम्हारे परिजनों तक पहुंचा दूं···वहां तुम शान्त रह सकोगी!'

'शान्त···' वह बोलीं, किन्तु लगा कि उस धीमे बोल में भी एक चीख छिपी हुई थी। वह कहे जा रही थी—'आप इस कालचक्र में बन्दी हों और मैं शान्त रहूं, यह कैसे संभव होगा देव? तनिक सोचिये क्या मातृगृह में रहकर भी मैं आपको बिसरा सकूंगी···उस आपत्ति से अजानी रहूंगी जो प्रतिक्षण पूर्व महाराज के विश्वस्तों पर मंडरा रही है ?'

वसुदेव हंसे। एक बार स्वयं पर ही पुनः विश्वास करना चाहा—क्या हंसे ही हैं? या अभिनय लादा है अपने आप पर कहा—'जानता हूं कि मन तुम्हारा वहीं रहेगा, जहां मैं रहूंगा···किन्तु जो भी शुभाशुभ घटे, उ दर्शक रूप में तो परे रह सकोगी। यही विचारकर मैंने तुम्हें मातृगृह

का निर्णय लिया है···। यह तुम्हारे लिए ही नहीं—अपने उस शिशु के लिए भी शुभ होगा जो शीघ्र ही जनमने वाला है !'

रोहिणी ने उत्तर नहीं दिया। प्रश्न शान्त हो गया था, किन्तु आंखों की जिन पुतलियों पर आंसू केवल जल बनकर तिर रहे थे, सहसा बूंद में बदलकर ढुलक आये।

वसुदेव ने उनके कन्धे पर हाथ रखा। हौले-हौले थपथपाते हुए बोले—'शान्त हो, देवी···। यह अवसर दुखी होने से कहीं अधिक संयत रहने का है···। यह राजकुल के हर सदस्य का दायित्व धर्म !'

रोहिणी ने आंसू पोंछ लिए—सिर झुका लिया। नहीं चाहती थी कि पति को लगे, उनकी अवज्ञा हो रही है···धर्म किसी भी क्षेत्र, समय और काल का हो—सहज मानव प्रतिक्रिया भला उस तरह संयत की जा सकती है, जिस तरह सूक्तियों में व्यक्त होती है···? रथ चलता रहा···



विभिन्न अधिवनों की यात्रा करते रहे थे वसुदेव। रोहिणी को मातृ-गृह छोड़ दिया गया था। हर अधिवन में वृष्णि, अन्धक या यदुवंशियों से भेंट-वार्ताएं करते। बहुत बार ये वार्ताएं लम्बी चली थीं···तर्कातर्क हुए···।

कंस के महामंत्री होने के नाते उनके स्वागत की औपचारिकताएं तो सभी अधिवनों की प्रमुख बस्तियों में हुई थीं, किन्तु सहसा प्रमुखगण अपने आपको उनके सामने व्यक्त नहीं करते थे। उल्टे उनकी दृष्टि में वसुदेव को लेकर एक विशेष प्रकार की उपेक्षा और घृणा व्यक्त होती। कुछेक स्थानों पर साफ-साफ सुनना पड़ा था उन्हें ! 'बड़ा खेद हुआ मन्त्रिवर···। क्रूर युवराज की घिनौनी राजनीति में आपने साथ दिया···? सुना तो विश्वास नहीं हुआ था, किन्तु अब देखकर जान रहे हैं कि विश्वास के साथ, विश्वासघात कैसे होता है ?'

बहुतेक उलाहने ! बहुतेक व्यंग्य···। किन्तु वसुदेव सुनते' संयत रहते, फिर धीमे से बात करते—बात का हर शब्द समय और काल के अनुसार इतना तर्कसंगत होता कि व्यंग्य करने वालों को पछतावा होने लगता—क्यों कर इतना कटु बोल गये उन्हें···?

अन्त में वसुदेव उन्हें समझाते—'राजनीति का सिद्धांत है मित्र'''। उत्तेजना और क्रोध पर यथाशक्ति अंकुश लगाये रखना ! अन्यथा अनेक बार चौसर पर जय पाते-पाते, पराजय मिल जाया करती है !'

प्रश्नकर्ता शान्त हो जाते, केवल सुनने लगते—महामति वसुदेव आगे क्या कहेंगे ? क्या निर्णय लेंगे'''?क्या सुझाव होगा उनका ?

और फिर शान्त स्वर में सुझाव आता—'इस क्षण उचित यही है कि मथुरा और गणसंघ की प्रजा के शुभार्थ महाराज कंस का समर्थन करते रहें'''वह अवसर शीघ्र आयेगा, जब कंस से मथुरा को मुक्ति मिल सकेगी !'

'पर कैसे ?'

यह 'कैसे' तो उन्होंने भी नहीं सोचा था—केवल इतना ही सोच सके थे कि शान्ति का वातावरण बन जाने पर 'क्या करना है' निर्णय ले सकेंगे'''? वह भी स्पष्ट कह देते—'इस समय तो मैं भी निश्चय नहीं कर सका हूं—क्या किया जायेगा या क्या करना होगा ? किन्तु इतना जानता हू—शीघ्र ही वह समय आयेगा, जब मथुरा गणसंघ अपनी पूर्व संघप्रणाली के अन्तर्गत चल सकेगा ! किसी व्यक्ति विशेष की अन्धसत्ता या इच्छा से नहीं !'

इस तरह यात्रा के हर चरण में उन्होंने कंस के प्रति उभरा विद्रोह दबाया नहीं था, अपितु शान्त किया'''कुछ समय के लिए मुंह बन्द ज्वालामुखी बना दिया !

चरण-चरण सम्पूर्ण यात्रा पूर्ण हुई—लौटते समय अन्तिम पड़ाव आया—'गोकुल !' यादववंशियों का जनक्षेत्र'''। नंद थे गोकुल के प्रमुख। वसुदेव के बालसखा।



चित्रसेन के गुप्तचरों ने समूची यात्रा में केवल गोकुल ही था, जिसे छोड़ दिया। सोचा था—गोकुल की स्थिति ही क्या है गणसंघ में ? साधारण-सा ग्राम है, फिर मथुरा के बहुत समीप। वहां वसुदेव केवल मैत्री-सम्बन्ध के कारण ही रुके होंगे। गोकुल के नंद गोप क्षेत्र-प्रमुख तो थे, पर गणसंघ की राजनीति को बहुत प्रभावित नहीं करते थे !

चित्रसेन के पास पहुंचकर सूचनाएं दे दीं। सभी सूचनाएं लेकर चित्रसेन महाराज कंस के विशेष कक्ष में उपस्थित हुआ।

चित्रसेन की उपस्थिति सहज थी। उस पर रोक-टोक भी न थी, किन्तु दृष्टि मिलते ही कंस समझ गये—कुछ विशेष है जो बतलाना चाहता है! देखते ही अन्तरंग कक्ष की ओर बढ़ गये। पीछे-पीछे चित्रसेन।

आसन पर बैठते ही प्रश्न किया था, 'कुछ विशेष ?'

चित्रसेन ने निवेदन किया था, 'महाराज की जय हो'''। महामंत्री वसुदेव के पीछे रहे गुप्तचर सभी सूचनाएं ले आये है'''

'किन्तु वसुदेव तो अभी यात्रा से लौटे नहीं ?' कंस ने आश्चर्यचकित होकर पूछा।

'वह अपने बालमित्र गोप नंद से मिलने गोकुल चले गये''''चित्रसेन ने जिस सहजता से कहा, लगभग उतनी ही सहजता से कंस ने बात ली—'अच्छा, अच्छा। जानता हूं नंद गोप उनके परमस्नेही हैं'''। सोचा होगा महावनो की निरन्तर यात्रा के बाद कुछ समय मित्र के यहां रुकें।' कंस बोलते-बोलते थमे, फिर पूछा, 'क्या समाचार हैं'''? क्या चर्चा हुई उनकी ?'

'आपकी आशंकाएं व्यर्थ हुईं देव'''।' चित्रसेन ने धीमे स्वर में उत्तर दिया— 'महामंत्री ने सचमुच आपके पक्ष में सम्पूर्ण शान्ति और स्नेह का वातावरण बनाने की चेष्टा की। बहुत बार तो उन्होंने उत्तेजित जन समूहों को भी जरासंध से युद्ध करने के परिणामों को जतलाया'''यहां तक कहा कि यदि कुमार महाराज उग्रसेन से सत्ता नहीं लेते तो अब तक गणसंघ दावानल में झुलस रहा होता ! कुमार ने सम्पूर्ण नीतिज्ञता और राजनीति चातुर्य से जो कुछ किया—जन शुभार्थ किया !'

कंस सुनते रहे'''मन ही मन वसुदेव के प्रति आशंकाओं के जिस कोहरे ने उन्हें ग्रस रखा था—छंट गया ! चित्रसेन विश्वस्त सेवक था। उसकी जुटायी सूचनाएं असत्य नहीं हो सकती थीं।

प्रश्न न कर चित्रसेन से मिलता विवरण ही सुना। चित्रसेन बतला रहा था—'महामंत्री ने बुद्धिमत्तापूर्ण तर्कों से अनेक बार क्षेत्र-प्रमुखों और सामन्तों को शान्त किया देव'''। उन्हें आपके अनुकूल बनाया'''ऐसी-ऐसी

बातें कीं कि हमारे गुप्तचर भी सुनकर प्रसन्न हुए ! वसुदेव की यात्रा ने निःसन्देह महाराजाधिराज का शुभ किया है !'

'हमें प्रसन्नता हुई चित्रसेन···।' कंस के स्वरमें सहसा हल्कापन उभर आया था। चित्रसेन को भी सुख मिला। पिछले अनेक दिनों से कुमार को निरन्तर उत्तेजित और व्यग्र ही देखता रहा था वह···पहली बार वे शान्त और सहज दीखे।

'महामंत्री के स्वागत की जोरदार व्यवस्था की जाये चित्रसेन···। हम स्वयं उन्हें तिलक करेंगे, सम्मान आसन तक लायेंगे !' कंस का आदेश हुआ !

चित्रसेन ने सिर झुकाया। चला आया। कंस प्रसन्नमन आंखें मूंदकर लेट रहे। लगता था कि जिस सत्ता के पौधे को रोपा था, अब जड़ पाने लगा है···कितने सन्तोष की बात !

'तुम्हें महामंत्रिपद पर न देखकर कारागृह में देखता तो मुझे सन्तोष मिलता, वसुदेव !' नंद गोप के स्वर में चिन्ता से अधिक घृणा थी। लगता था कि हर शब्द इस तरह कहा है जैसे सीना चीरने का प्रयत्न किया हो...। हर शब्द नुकीला, सांघातक अस्त्र की तरह !

वसुदेव ने सुना, शान्त रहे। केवल शीतल दृष्टि नंद के चेहरे पर गड़ाये रखी। जानते थे—नंद सरल हैं और सरलता का सबसे बड़ा दोष यही होता है कि वह कटुता को तरह छिप नहीं पाती। वही कुछ देख रहे थे। यही सोचकर सन्तुष्ट हुए थे कि नंद गोप ने उन्हें दुत्कार नहीं दिया। उनका अधिकार था—चाहते तो वसुदेव को गृह-प्रवेश की आज्ञा भी न देते। पर वैसा न कर उन्होंने वसुदेव को घर के भीतर ही नहीं, अतरंग कक्ष में आने दिया था। गले भी मिले थे, पर जो शब्द-तीर छोड़ना था—छोड़ दिया।

उतने पर ही थम सके होते तो गनीमत होती। आगे भी कहे गये थे—'जिस क्षण यह सुना कि कंस ने वृद्ध राजा को बन्दी बना लिया है, उस समय उतना आश्चर्य नहीं हुआ था, जितना यह सुनकर हुआ कि तुम अब भी उस दुर्बुद्धि, क्रूर सत्ताधारी के सेवक बने हुए हो...'। नंद के स्वर में सहसा पीड़ा उभर आयी थी। गरदन झुकाकर अचानक उन्होंने एक श्वांस लिया, कहा—'सच कहो, देवतुल्य वसुदेव...। तुमसे यह हो कैसे सका...? किस बाध्यतावश यह सुखानंद की आशा में तुम यह नीचकृत्य किये जा रहे हो...? मित्र हो अतः स्थिति को सह नहीं पा रहा हूं...तुम्हें लेकर सोचते हुए जितना कष्ट होता था—उससे कहीं अधिक आज तुम्हें

अपने सामने पाकर हुआ है !'

वसुदेव फिर भी शान्त ही रहे। केवल नंद की ओर श्रद्धा से भरे देखते रहे। राह भर यही कुछ सोचते आये थे ! नंद है अपनत्व से भरे हुए'''। एक तरह से वसुदेव पर सम्पूर्ण स्नेहाधिकार है उनका। निश्चय ही सरल मन उन्हें महामंत्री के नाते अपने यहां आना सह नहीं सकेगा। वही हुआ।

एक बार बोल पड़ने की इच्छा हुई थी, किन्तु स्वयं को दबोच लिया। पहले नंद गोप के भीतर उन्हें लेकर जितनी पीड़ा और दुख है, उसे बाहर निकल आने देंगे—फिर अपनी बात कहेंगे। नंद की सरलता को जिस गहराई तक जानते थे, उतनी ही गहराई तक उनके मन की निर्मलता को भी पहचानते थे वसुदेव।

उत्तेजना और क्रोध धीमे-धीमे रिसने लगे हैं'''केवल वसुदेव ने नहीं, स्वयं नंद ने अनुभव किया'''अन्तिम बार केवल इतना ही कह सके थे नंद 'तुम्हें इस महामंत्रिपद पर पाकर बहुत कष्ट हुआ है वसुदेव'''। बहुत '''। तुम न आते तो अच्छा था!' गला भरा गया था नंद का—पीड़ा से। कांपती हथेलियों में वसुदेव का हाथ लेकर बड़बड़ाने लगे—'तुमने ठीक नहीं किया'''।'

वसुदेव को लगा कि बोलना आवश्यक हो गया है। कहा—'तुम यदि मुझे दोषी समझ रहे हो, तो ऐसा समझते हुए जितना तुमने कहा है, वह सब शिरोधार्य करूंगा'''पर जो कुछ कहने जा रहा हूं—उसे ध्यान देकर पहले सुन लो'''। फिर मुझे मेरी और मेरी स्थिति को लेकर निर्णय करना नंद!'

नंद ने भोली दृष्टि चेहरे पर गड़ा दी। लगा कि मित्र की आंखें भी उतनी ही भरी हुई हैं, जितना नंद का अपना आप भरा हुआ है।

वसुदेव कहे गये—'जिस तरह जो कुछ घटा, तुम सुन चुके होगे। एक रात्रि अनायास ही युवराज ने महाराज उग्रसेन को बन्दी गृह में डाल दिया'''।हम सब लोगों को तो और हुए ज्ञात हुआ कि गणसंघ का नेतृत्व जरासंघ के प्रति समर्पित व्यक्ति के हाथों चला गया है'''। ौर तब कंस का विरोध किया जाना मूर्खता होती'''। ऐसे समाचार भी मिल चुके थे कि

मगध की सेनायें मथुरा से बहुत दूर नहीं हैं···तनिक सोचो, उस अवसर पर कंस से जूझने का परिणाम क्या हो सकता था नंद···? यही ना कि जो गणसंघ के प्रति निष्ठावान लोग हैं, वे आत्महत्या कर लें···। नीति-युक्त यही था कि किसी तरह अपनी रक्षा करके उस अवसर की प्रतीक्षा की जाये, जब मथुरा को कंस से मुक्त कराया जा सके···? इसीलिए मैंने कंस को समर्थन दिया···। इसमें नीति को यदि तुम दोष मानते हो तो मैं तुम्हारा ही नहीं सम्पूर्ण नागरिकों का अपराधी हूं—जो दंड दोगे, सिर झुकाकर स्वीकार लूंगा···।'

नंद स्तब्ध होकर देखते रह गये थे मित्र को। फिर चेहरा बुझ गया। लगा जैसे कुछ पल पूर्व जितना कुछ कह-सुन चुके हैं—सबके प्रति स्वयं को दोषी और अपराधी समझ रहे हैं। अजानी ग्लानि से मन भरा हुआ।

वसुदेव टकटकी बांधे देख रहे थे नंद की ओर···समझ चुके थे कि नंद का क्रोध केवल शांत नहीं हुआ है, वह ग्लानि भी अनुभव करने लगे हैं···

हाथ अब भी नंद की दोनों हथेलियों के बीच था, पर अब थरथराहट नहीं थी उसमें। लगता था कि भूकम्प थम गया है। सब कुछ स्थिर···। पहले ही जैसा।

ठीक तभी नंद की आंखें भर आयीं। हाथ खींचे और वसुदेव को गले लगा लिया। अस्पष्ट हो गया था स्वर—भर्राहट ने गले को अवरुद्ध कर दिया था किन्तु बड़बड़ाये जा रहे थे—'मुझे क्षमा करना मित्र···। बहुत दोष हुआ! उत्तेजना में न जाने क्या कुछ बक गया मैं···। मुझे क्षमा करना!'

वसुदेव बोले नहीं। आंखें उनकी भी छलक आयी थीं—गला उनका भी भर्राया हुआ। केवल नंद गोप की पीठ सहलाते रहे···जैसे एक भोले बालक को सांत्वना दे रहे हैं···।



केशी और प्रद्युम्न से विशेष चर्चा कर रहे थे महाराज कंस। कक्ष विश्वस्त सेवकों से सुरक्षित था। वसुदेव की यात्रा के जो समाचार मिले थे,

उन्होंने बहुत सन्तुष्टि दी थी। केशी और प्रद्युम्न को सब कुछ सुनाकर कहा था—'वसुदेव का अपने पक्ष में होना बहुत शुभ हुआ है…। उनकी यात्रा से निःसन्देह गणसंघ की उत्तेजित जनता का आक्रोश ठंडा हुआ होगा …पर वह रहेंगे सदा ही प्रभावशाली…। केवल इस चिन्ता ने व्यग्र कर रखा है !'

केशी और प्रद्युम्न। दोनों ही कभी महाराज उग्रसेन के विश्वस्त सेवक हुआ करते थे। केशी को सेना में उच्च पद तक पहुँचाया था राजा उग्रसेन ने। किन्तु सेनापतित्व के मोह जाल में सुविधा से कंस ने फाँस लिया था उसे। स्वभावतः क्रूर, उद्दंड और मदांध केशी भी सत्ताशक्ति की उसी भूख का मारा हुआ था, जिस भूख ने कंस को पितृघाती बनाया था। समझौता होने में बहुत देर नहीं लगी थी।

कंस का बतलाया, सब कुछ शान्त स्वभाव में सुना था केशी ने। प्रद्युम्न की ओर देखा—सोचा था कि उसकी अपनी तरह संभवतः प्रद्युम्न भी इस सूचना पर विश्वास नहीं कर सकेंगे, पर लगा कि प्रद्युम्न पूरी तरह सन्तुष्ट हैं…।

जितना जो कुछ, कंस ने कहा, उसे सुनकर केशी को सन्तुष्ट हो जाना चाहिए था। सन्तुष्ट ही नहीं, वसुदेव की ओर उसे निरापद अनुभव करना चाहिए था…। पर केशी का मन तैयार नहीं था…। वसुदेव के स्वभाव, अन्तस्तल में बैठे राजनीतिक चातुर्य और भावहीन चेहरे को बखूबी पहचाना था उसने। वसुदेव उग्रसेन ही नहीं, गणसंघ पद्धति में पूर्णतः विश्वास रखने वाले हैं…यह असम्भव है कि वह कंस के स्वार्थ पूर्ण करें…। यदि कुछ किया भी है तो वह इतना उलझा हुआ होगा कि बुद्धि-हीन कुचक्र सहसा उसकी गहराई नहीं समझ सके होंगे! केवल मथुरावासी को लेकर महाराज तक सूचनाएँ पहुँचा दी हैं…। उग्रसेन को नहीं समझा।

और तब कंस भी निश्चिन्त हो गये हैं। केवल निश्चिन्त नहीं, सम्पूर्ण विश्वास में अन-वरत! इस सीमा तक कि वह वसुदेव के प्रति सम्पूर्ण विश्वास लिए हुए बैठे रहे हैं…

कंस कह रहे थे—'उग्रसेन पर वसुदेव जैसे कोमल और कुटिल का होना ही आवश्यक है…। इन्होंने निर्णय किया है कि वहाँ रहेंगे !'

आहत प्रद्युम्न भी हुए कंस के सत्तारूढ़ होते ही मन के भीतर कहीं आस जग आयी थी—अब साधारण सलाहकार से उठकर मंत्रिपद और फिर महामन्त्रित्व तक पहुंचाना सरल होगा। कल्पना भी नहीं थी कि वसुदेव अपने लगभग धराशायी होते आसन को असामान्य सन्तुलन से सम्हाल लेंगे ! पर किया भी क्या जा सकता है ? चुप रहे। मंत्रिपद मिल गया है—इसी पर सन्तोष करना ठीक होगा। मन साध लिया।

कंस सहसा उठे, कहा—'सेनापति'''।'

'आज्ञा महाराज ?' विनम्र भाव से केशी भी उठ खड़ा हुआ।

'हमारी इच्छा है कि गोकुल से लौटते ही महामन्त्री वसुदेव का भव्य स्वागत किया जाये'''।' कंस का आदेश गूंजा—'उन्होंने हमारे शुभार्थ बहुत कुछ किया है।'

केशी ने दांत भींचकर स्वीकार में शीश झुका दिया—'जैसी आपकी आज्ञा !' कंस विश्राम कक्ष की ओर बढ़ गये। प्रद्युम्न और केशी खड़े कुछ पल सन्नाटे भरी आंखों से एक-दूसरे को देखते रहे, फिर थकी-सी चाल में अपने-अपने निवासों की ओर लौट पड़े।



राह में फुसफुसाते हुए वार्ता चली। सबसे पहले केशी ने प्रारम्भ किया—'क्षमा करें, मंत्रिवर'''। क्या आपको भी लगता है कि वसुदेव ने वही किया हो महाराज कंस बतला रहे हैं ?'

प्रद्युम्न की दृष्टि उठी। इस दृष्टि में सतर्कता थी। उससे कहीं अधिक नीति-चातुर्य भी झलक रहा था—किन्तु होंठ नहीं खुले। इतनी शीघ्र किसी उलझी हुई बात पर सम्मति देने का स्वभाव नहीं था उनका। केवल उनका ही क्यों, किसी नीतिज्ञ का नहीं होता। फिर यह थी बड़ी विलक्षण स्थिति ! कंस, पिता की तरह शान्त स्वभाव नहीं हैं—यह संकेत पाते ही कि प्रद्युम्न की ओर से असन्तुलित शब्द बाहर आया था, पल भर में पद तो दर किनार जीवन छीन लेने में भी संकोच नहीं करेंगे !

केशी ने पुनः कुरेदा—'कुछ बोलिए, मंत्रिवर'''। इस तरह शान्त रहे तो महाराज कंस की सत्ता को ही नहीं, हम सभी के अस्तित्व को भय है। सम्मति दीजिए ?'

'क्या कहूं ?'

'वसुदेव ने सचमुच मथुराधिपति के शुभार्थ वातावरण बनाया होगा ?' केशी ने साफ-साफ प्रश्न कर दिया।' क्या आपका भी यही विचार है ?'

'सूचनायें तो यही मिली हैं महाराज को !' प्रद्युम्न ने उत्तर दिया, किन्तु बहुत सधाबंधा। न इधर झुके थे, न उधर। ऐसे जैसे किसी रस्से पर चलकर नट का करतब बतलाया हो।

केशी वक्र दृष्टि से हंसा, 'आप चतुर हैं महामंत्री···'

'मैं महामंत्री नहीं—मन्त्रियों में से एक हूं···आप भूल रहे हैं सेनापति प्रद्युम्न ने हंसकर सुधार किया।

'आपको महामंत्री ही होना चाहिए !' केशी उसी उद्दंडता के साथ बोला—'क्या आपकी भी यही इच्छा नहीं है ?'

प्रद्युम्न फिर चुप मार गये। लगा था कि मनुष्य से कछुए हो गये हैं। विपत्ति पूर्व सिर छुपा लेना स्वभाव।

केशी केवल वाचाल ही नहीं बहुत उद्दंड भी था। उससे कहीं ज्यादा शक्तिमद में चूर। वह शरीर से जितना हृष्टपुष्ट था, बल में उतना ही। मथुरा के श्रेष्ठतम योद्धाओं में गणना होती थी उसकी। कंस ने पद के योग्य सुपात्र चुना था, किन्तु बुद्धि की उच्छृंखलता ने पद के योग्य गरिमाशाली नहीं रहने दिया था उसे।

प्रद्युम्न के चुप को हंसकर टाल गया था वह···केवल यह कहकर मुड़ गया था···'मैं जानता हूं, महामन्त्री ! आप भी वही सोच रहे हैं जो मैं सोच रहा हूं···अच्छा यह होता कि आप स्पष्टत: मेरा साथ देते विश्वास कीजिए, मैं वसुदेव के षडयंत्र को एक न एक दिन अवश्य ही महाराज के सामने ला दूंगा···।'

प्रद्युम्न ने सुना। कदम ठिठके थे, पर अपने आपको धक्का मारकर आगे लिये गये। उद्दंड केशी से इस तरह राह चलते गंभीर राजनीतिक वार्ता नहीं की जा सकती थी।

□

वसुदेव गोकुल से लौटे। सन्तुष्ट थे, प्रसन्न भी। नंद को पूरी तरह

सन्तुष्ट कर आये थे। अधिक प्रसन्नता इस बात पर थी कि उन्होंने यदा-कदा रोहिणी की सुधि लेते रहने का विश्वास भी दिलाया था···

मथुरा में भव्य स्वागत हुआ उनका। स्वयं महाराज कंस ने राजनिवास के मुख्यद्वार पर आकर उन्हें स्नेहपूर्वक गले लगाया, जन-समुदाय के बीच प्रसंशा की। वसुदेव निश्चिन्त हुए। कभी-कभी राह में शंका ने ग्रसा था मन। कहीं, किसी गुप्त सूत्र से कंस को ज्ञात न हो जाये कि वसुदेव इस राजयात्रा में जनपदीय राजाओं, नायकों से कंस को ही उखाड़ने की असन्तुष्ट उग्र इच्छा अधिक उग्र कर आये हैं···।

पर यह स्वागत-सम्मान···? सब जतला रहा था कि कंस पूरी तरह उनकी ओर से निश्चिन्त है !

पर कब तक रह सकेगा···? या कब तक वसुदेव अपने प्रभाव में पनपते, जड़ लेते विद्रोह को काबू में कर सकेंगे ? किसी दिन, किसी घटना विशेष से किसी विशिष्ट जनपद में फूट पड़ा तो हर छिलती परत जिस चेहरे को सामने लायेगी—वह वसुदेव का ही होगा···।

पर यह समय यह सब सोचने का नहीं था। सम्पूर्ण राजकीय स्वागत-सम्मान पाकर निवास पर आये। विश्राम किया। इच्छा हो रही थी कि कुछ पल निद्रा लें, पर वैसा हो नहीं सका। एक-एक करके वे चेहरे याद आने लगे थे, जिनसे क्रमशः शक्ति-सगठन और परस्पर सम्बन्ध बनाते रहने की योजना गढ़कर आये थे वसुदेव···गणसंघ के विभिन्न जनपदीय राजाओं और मुखियों के बीच शक्ति-सयोजन का यह छिपा खेल कब तक कंस के सामने नहीं आयेगा···? अपनी ओर से तो बहुत सावधान कर दिया था सभी को—"कुछ दिन शान्त रहकर ही वह सब प्रारम्भ करना उचित होगा···।" पर लग रहा था वे शान्त नहीं रह सकेंगे। सभी के भीतर स्वतत्र्य इच्छा चिनगारी बनी हुई थी···कब सुलगकर दावानल बन जायेगी—अनुमान कर पाना असंभव···।

और कमजोर दावानल भी तो नष्ट हो जाया करता है···। वसुदेव यही कुछ सोच रहे थे—नींद पलकों पर आकर ठहर गयी थी।



मानसी की आँखें पथराने लगीं थीं···।

आती हर दिन समाचार लाती रही थी। किसी दिन यह कि आज महाराज कंस ने अमुक राज्योत्सव में भाग लिया और किसी दिन यह कि आज कंस राजसभा में उपस्थित न होकर आखेट पर चले गये···।

मानसी सुनती। मन को बार-बार समझाती—'नहीं-नहीं, राजनीतिक उलट-फेर के कारण संभवतः राजा समय हो नहीं निकाल पा रहे होंगे कि मानसी तक आयें, किन्तु हर बीतता दिन और बीतती रात विश्वास के उजाले को धीमे-धीमे अविश्वास की बदली से ढकती हुई! फिर भी अपने को सहेजती। मन के बिखराव को सहेटे-सहेटकर दाने-दाने जोड़ती, अपने को ही सांत्वना देती···।' नहीं-नहीं···। बहुत छोटे और ओछे ढंग से विचार रही है मानसी! कंस ने उसे उतना ही निर्मल विश्वास और नेह दिया है, जितना उसने कंस को दिया है!"

लगता कि भीतर से कोमल, किन्तु कुरेदनभरी हंसी उठती है। एक धिक्कार मानसी पर उछालती हुई···। 'पगली···। तुझे जो पाना था—तूने पा लिया और कंस जितना पा सकते थे—तुझसे पा चुके···। अब कैसा मोह उनका और कैसा तेरा···? जिस तरह सयोजन से आरंभ हुआ था सब कुछ, उसी तरह संयोजित ढंग से समाप्त हो गया···। भूल जा कंस को···। इसलिए कि कंस भी तुझे बिसरा चुके हैं!'

मन होता चीख पड़े—'नहीं!' पर होंठ···? वे न जाने किस मर्यादा से चुप रह जाते है—चिपके हुए!

मर्यादा से या कि भय से? जरासंध को संकेत मात्र मिला और मानसी जीवन मुक्त हो जायेगी···यही नहीं, कंस स्वयं भी अपने आपको किसी तरह मानसी के साथ लांछित होना पसन्द नहीं कर सकेंगे! वह मथुराधिपति हैं···।

और मानसी···? एक साधारण-सी छलना! कभी रंगमंच पर नृत्याभिनय करके हजारों-हजार मागध-जनों को छलती थी, फिर उसने मथुरा के स्वातंत्र्य को छला और अब खुद को भी छल रही है···। यह विचार कर कि कभी अंकशैय्या में लेने वाले मथुराधिपति उसे राजशैय्या पर ले लेंगे···।

विचित्र होता है छल और उससे भी अधिक विचित्र होते हैं छली···। छलते-छलते जब थकने लगते हैं या छलने को कुछ नहीं बचता तो स्वयं

को ही छलकर स्वयं पीड़ा का आनंद लेने लगते हैं…। अजब-सी क्रूरता से भरी आनदलाभ की इच्छा जनम आती है उनके भीतर !

कितनी बार पलकों के भीतर आंसू गड़े हैं ? कितने एकांतों मे ये आंसू विद्रोही होकर पलकों से नीचे उतर आये हैं ? और कितनी बार रातों के सन्नाटे में इन आंसुओं ने मानसी के आत्म-विश्वास को गलाकर अपने ही भीतर डुबो लिया है—मानसी को याद नहीं। पर इतना याद है कि हर बार मानसी जली है, क्षीण हुई है, पीड़ित हुई है। उसने अपने स्वत्व को अपने से ही लांछित और अपमानित अनुभव किया है। अपने सौन्दर्य पर अपने ही हठों से थूका है…।

पर अब असहाय होने लगा है सब ! मानसी रोज थक जाती है प्रतीक्षा में—उससे कहीं अधिक थकती है रात्रि मे जब अपना आप ही उसे नींद नहीं लेने देता…। ऐसा अपमान…? ऐसा तिरस्कार…?

कंस, लगते तो नहीं थे ऐसे…?

मन हंसता है—मूर्खा…। जिस व्यक्ति को सत्तामोह पिता के प्रति मर्यादित नहीं रख सका…। जिसकी लोलुपता ने राज्य का स्वातंत्र्य नष्ट कर दिया…उसे लेकर तू विश्वास खोज रही है ?

…और मानसी सहसा स्वयं से ही निरुत्तर हो जाती है। मन-बुद्धि से खाली! एक शिलामूर्ति-सी !

□

एक के बाद एक दिन बीत रहे हैं और यह मूर्तिभाव शरीर को जकड़ चुका है—अब मन भी इसकी जकड़ में है…। आशी तरह-तरह से उसे प्रसन्न रखने की चेष्टाएं करती है।

पर व्यर्थ…।

मानसी भी समझ रही है और आशी भी—अब सब व्यर्थ होने लगा है। अर्थवान रह गया है केवल खालीपन। रहा नहीं गया तो एक दिन कह बैठी थी आशी, 'देवी ?'

मानसी ने दृष्टि उठायी—पथरीली, प्रकाशहीन।

'क्षमा कर दें तो एक प्रार्थना करूं ?'

मानसी ने एक थरीता सांस लिया, कहा—'बोलो ?'

'आप मथुराधिपति को लेकर इतनी चिन्ता न करें'''। मुझे विश्वास है कि वह एक दिन अवश्य आयेंगे'''' आशी ने जैसे मुरझाते मन को सींचा था—'राज-काज की स्थितियां जटिल होती हैं, तिस पर जिस तरह कंस राजा बने हैं, उसमें तो और भी जटिल हुई हैं। आपको तनिक धैर्य रखना चाहिये!'

मानसी ने उसे टकटकी बांधे हुए देखा, फिर जैसे अपने को ही छिपाने की व्यर्थ-सी कोशिश की। बोली—'तू क्या सोचती है कि मैं उनके आने न आने को लेकर चिन्ताग्रस्त हूं'''? नहीं, आशी! सच केवल यह है कि मुझे मगध का स्मरण आ रहा है'''बहुत व्यग्र हूं अपनी जन्मभूमि देखने के लिए!'

आशी ने उसे देखा, स्वर की पीड़ा भांपी, फिर जैसे मानसी के असत्य को ही सत्य स्वीकार लिया। बोली, 'मैं भी ऐसा ही समझती हूं, देवी''' और अगर सचमुच ऐसा ही है तो वह अवसर आ पहुंचा जब आप मगध देखेंगी'''। मगध का राजकीय सम्मान पायेंगी!' यह लौट पड़ी थी''' मानसी ने जैसे समझना चाहा था कि उसने क्या कहा, किस संदर्भ में कहा '''पर आशी ने अवसर नहीं दिया। जब तक मानसी विचार कर सके—वह प्रकोष्ठ से बाहर निकल गयी।



चार दिन बाद ही सब कुछ सच हो गया था। यह सब, जो आशी अनचाहे ही बोल गयी थी। बकुल उपस्थित हुआ। मगध का विश्वस्त सेवक और गुप्तचर। मानसी से तुरंत भेंट चाहता था वह।

भोर की पहली किरन के साथ ही मानसी को समाचार दिया गया था—'बकुल भेंट करने उपस्थित हुए हैं!'

बकुल'''! मानसी ने सुना—धक्का महसूस किया। किसलिए?

पर किसलिए आ सकता है? प्रश्न का उत्तर बकुल के पास ही हो सकता था—सन्देश लायी आशी के पास नहीं। कहा था, 'प्रतीक्षा करें—मैं आती हूं।'

आशी चली गयी।

मानसी ऊहापोह में किसलिए आया होगा? अनुमानों के अनेक

ने लहरों की तरह बार-बार मानसी के मन को हिलाना प्रारम्भ कर दिया... किसलिए ?

क्या सम्राट जरासन्ध का कोई सन्देश होगा···? अथवा मानसी के लिए कोई समाचार ?

जरासंध का सन्देश भी हो सकता था— मानसी के लिए समाचार भी !

पर मानसी इतने अनुमान भर से सन्तुष्ट नहीं। जाने क्यों लग रहा है जैसे कुछ अशुभ घटने जा रहा है···या अशुभ समाचार लाया होगा बकुल !

मन अकुलाहट से भर उठा। उससे कहीं अधिक भय। क्या कहेगा बकुल और किस तरह उस सबको मानसी सह सकेगी··? यह कल्पनातीत !

कुछ ही पलों में इस तरह थक गयी थी जैसे घन्टों की दौड़ ने हांफने के करीब पहुंचा दिया हो। मौसम ठंडा था, पर जाने क्यों पसीना छलछला आया माथे पर···माथे पर ही क्यों—शायद सारे शरीर में।

कुछ देर पलंग पर बैठी रह गयी फिर जैसे-तैसे स्वयं को सम्हाला और लगभग अपने को घसीटते हुए भेंट-कक्ष की ओर बढ़ी···।

बकुल सामने था।

मानसी ने देखा—ठिठक गयी, फिर जैसे याद आया—कुछ भूल कर रही है। आगे बढ़ी।

बकुल सम्मान में उठा, कहा, 'सम्राट ने देवी को शुभकामनाएं और बधाई दी है···! बहुत प्रसन्न हैं वह...!'

मानसी ने सुना—लगा कि कानों में शोर उठने लगा है। मन को ज्यादा और ज्यादा थकाता हुआ।

मानसी पास पहुंच चुकी थी। बकुल ने पुनः अपना आसन ग्रहण किया। कहा, 'विशेष रथ भेजा है आपके लिए···! कहा है—आप जिस साध्य के लिए गयी थी, वह सिद्ध हुआ। मगध पर आपने उपकार किया। अब आप मगध लौटें !'

आशी एक ओर खड़ी थी—दिखने में शान्त, किन्तु गहरी अशांति से भरी हुई !

मानसी कुछ बोली नहीं तो बकुल ने राजाज्ञा का अगला अंश सुना दिया—'मगधराज जरासन्ध तुरंत आपसे भेंट करना चाहते हैं। उनको

इच्छा है कि वह अपने ही हाथों आपको इस सफलता के लिए पुरस्कृत करें, राज सम्मान दें !'

मानसी सब कुछ सुन रही थी···इस तरह जैसे पूरी तरह शिला हो चुकी हो। सचमुच शिला ही तो हो गयी है वह ? शिला न हुई होती तो भला इस तरह शान्त बैठी रहती वह ? अश्रुहीन···! शब्दरिक्त !

बकुल कहे गया था—'सन्ध्या समय ही यहां से विदा होना पडेगा···।' फिर वह आशी की ओर मुड़ा था—'मगधराज की इच्छा तुरन्त पूरी हो, यह भी कहा है उन्होंने। अनुकूल समय भी नहीं है। मयुराधिपति को ज्ञात नहीं होना चाहिए कि आप गन्धर्वकन्या नहीं, मगध की गुप्तचर हैं···! तुरंत मगध लौटना होगा आपको !' बकुल उठ खडा हुआ—'मैं चलता हूं।' शब्द पूरे करते-करते वह तीव्रगति से बाहर निकल गया।



बकुल कब का जा चुका है···पर लगता है कि शब्दरूप में वह मानसी के सामने उपस्थित है। केवल उपस्थित नहीं है—मगधराज के आदेश का अंकुश लिये हुए मानसी की आत्मा को कुरेद रहा है। गहरे तक मन को पहुंचाता हुआ···।

विशाल कक्ष खाली था—पर अजब-सा बोझिलपन लिये हुए···! जरासन्ध का वज्रादेश जैसे शब्दों के एक-एक बोल के साथ प्रहार कर रहा है···! यह प्रहार थमते नहीं, ये प्रहार कमजोर नहीं होते !

'जरासन्ध तुरत आपसे भेंट करना चाहते हैं। उनकी इच्छा है कि वह अपने ही हाथों आपको इस सफलता के लिए पुरस्कृत करें···! राजसम्मान दें !'

मानसी को लगता है कि यह शब्द यदि अधिक देर तक मन और प्राण को इसी तरह कचोटते रहे तो मानसी विक्षिप्त की तरह सिर धुनने लगेगी ! उस क्षण जो हुआ था उसका, बकुल से कह दे—'क्या सम्राट अब मुझे अपनी इच्छा पर जीने का अधिकार नहीं दे सकेंगे ?'

पर शब्द गले में ही फंसे रह गये थे। मानसी को यह नहीं भूलना चाहिए कि बकुल उससे कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। वह और मानसी एक स्थिति, एक नियति, एक कर्म कर रहे हैं···इस तरह अपने आपको उबारकर

मानसी बकुल के गुप्तचर स्वभाव को प्रश्नों से भर देगी और फिर वह इन प्रश्नों के कारण को खोजने लगेगा···बहुत कठिनाई नहीं होगी यह जानने-समझने में कि अजाने ही सही मानसी महाराज कंस के प्रति अतिरिक्त मोह से घिर गयी है···और बकुल का यह जानना, मानसी के लिए शुभ भी हो सकता है, अशुभ भी।

शुभ इस कारण कि हो सकता है बकुल उसके प्रति सहानुभूति और संवेदन से विचार करके कुछ न करे-कहे···और अशुभ इसलिए कि हो सकता है बकुल सारी सूचना अपना कर्त्तव्य धर्म निबाहना समझकर सम्राट तक पहुंचा दे···!

ऐसी सूचना पाकर जरासन्ध क्या करेंगे—मानसी खूब जानती है···! मगधराज के मन-स्वभाव और विचारों में तनिक भी संवेदन नहीं है—वह कोरे और कठोर राजनीतिज्ञ हैं···! अपितु उससे भी अधिक विचारहीन यंत्र···! वे मानसी, उसके स्त्रीत्व, समर्पण, प्रेम अथवा भावना किसी को भी नहीं आकेंगे! सीधा कठोर राज्यादेश होगा—'मानसी के जीवन की अब कोई आवश्यकता नहीं!' यह भी हो सकता है कि वह यह कहें नहीं—केवल दुर्घटना की तरह घटा डालें!

मानसी इस विचार भर से कांप उठी थी···! नहीं-नहीं! उसे अपनी भावना अपने ही भीतर दबाये रखनी होगी! उसकी यह नियति है, यही सत्य और यही बेबसी! शब्दों को गले में ही दबोच लिया था उसने···

पर लगता है कि अब ये शब्द आंखों की राह रिसने को हो आये हैं···पिघलते हुए! अनजाने ही मानसी रुआंसी हो उठी है···रुआंसी हुई है या कि रोने ही लगी है? कब, किस अजानी शक्ति और स्थिति में उसने हाथ उठाया और आंखों पर फिरा लिया—एक पर्त अंगुलियों पर तिर आयी···!

☐

रोने लगी थी वह···! बेबसी, खीझ, और लाचारी ने उसे अपने ही भीतर डुबो लिया था! लगता था कि उसका अपना आप कह रहा है—'तेरे सामने इसके अतिरिक्त और कोई राह नहीं है मानसी कि तू चुपचाप वह आदेशपालन करे जो मगधराज की ओर से आया है···!

एक गहरा सांस लिया मानसी ने। लग रहा था कि दिमाग खाली हो गया है—उससे कहीं अधिक खाली होने लगा है मन···! जिस जगह कंस के बाहुपाशों और प्रेमल शब्दों की स्मृति भरी हुई थी, सहसा किसी ने उलीच कर बाहर फेंक दी है···बिलकुल पशुभाव से ! ऐसे जैसे मानसी जीवित शरीर नहीं—मात्र एक लाश थी, जिसे किसी हिंस्र पशु के घिनौने पंजे ने उधेड़ना प्रारम्भ कर दिया था···! यह पशु है जरासंध···! पंजे—वह कठोर निर्मम राज्यादेश ! इसी तरह बहुत कुछ सोचती मानसी···शायद देर तक किन्तु एक स्वर ने चौंका दिया था उसे। मातृत्व और नेह में भीगा शब्द··· 'देवी ?'

मानसी ने माथा उठाया—अशनिका सामने थी। दृष्टि में मानसी के प्रति गहरी आत्मीयता और उससे भी कहीं गहराई तक समाया स्नेह···।

अशनिका से मानसी का अन्तर बाह्य कुछ भी छिपा नहीं है। किसी क्षण उसे मानसी ने सहेली के स्नेह से भरे पाया है, किसी क्षण मातृत्व का नेह मिला है उसकी वाणी में। किसी पल अधिकार की अपनत्वधारा और किसी बार आत्मीयता का मानवीय स्वभाव···! उससे कुछ भी छिपा नहीं। मानसी ने छलछलायी आंखों को उठाये हुए उसे देखा था, फिर बोलने के लिए होंठ खोलने चाहे, पर आशी ने अवसर नहीं दिया—कहा था—'जानती हू देवी कि मगधराज ने क्या कहलवाया है···? और उससे भी कहीं अधिक यह जान पा रही हूं कि आप क्या अनुभव कर रही हैं···?'

लगा था कि गीले, रिसते जख्मों की कुरेदन को हौले से सहेज दिया है आशी ने। मानसी की छलछलाहट सहसा ही रुलायी में बदल गयी थी··· शब्दहीन होकर भी जैसे चीख-चीखकर कहती हुई—'बोल, अशनिका···? मैं क्या करूं···? क्या करूं मैं ?"

संवेदना-पीड़ा और भावनाओं में इस तरह उबाल आया था कि वह पास खड़ी आशी के सीने से किसी बच्ची की तरह लग गयी थी···सिसकनें फूट पड़ी थी होंठों से···।

आशी ने भी वैसा ही व्यवहार दिया, जो उस क्षण मानसी की आवश्यकता थी। धीमे-धीमे स्नेह से सिर दुलराया फिर कहा था—'धैर्य रखें देवी···! सब ठीक हो जायेगा···! सब कुछ ! पर इस क्षण तुम्हें करना

यही होगा जो मगधराजा चाहेंगे···और वही उचित भी होगा !'

'किन्तु···आशी···? महाराज कंस से भेंट किये बिना मैं सहसा मथुरा नहीं छोड़ना चाहती !' आशी को और किसी बच्ची की मासूम निगाहों से देखते हुए ही मानसी ने जैसे-तैसे कह डाला था···।

'निश्चिन्त हो, देवी···! मैं वैसी व्यवस्था भी करती हूं !' आशी ने उत्तर दिया, धैर्य बंधाया और चल पड़ी।



मथुराधिपति कंस और अधिक व्यस्त थे···गोकुल से वसुदेव की अगवाई थी। फिर विशेष भेंट कक्ष में उनसे भेंटवार्ता हुई। बहुत कुछ कहा सुनाया था वसुदेव ने···विभिन्न महावनों और उनमें बिखरी यादव, वृष्णि और अन्धक शक्तियों से हुई बातचीत बतलाने के बाद कहा था—'मैंने यथाशक्ति तुरन्त सहेज-सम्हाल लिया है महाराज किन्तु···बार-बार इसी तरह भेंट क्रम चलाकर उनके विद्रोही होते मन को सहेजे रखना आवश्यक होगा !'

कंस सहमत हुए।

वसुदेव पर यही जिम्मेदारी सौंपकर मुक्त हुए। विश्वास पूरी तरह बैठ चुका था—वसुदेव उन्हीं के अनुकूल चलेंगे···उन्हीं को सहयोग करेंगे।

वार्ता-समय पर केशी भी उपस्थित थे, प्रद्युम्न भी। दोनों ही कुटिल भाव से वसुदेव का हर शब्द सुनते, सहेजते हुए। रात्रिभोज के लिए वसुदेव निमंत्रित किये गये, फिर अपने राजनिवास की ओर विदा हुए।

वसुदेव मुक्त हुए, किन्तु उनकी तीव्र बुद्धि को केशी और प्रद्युम्न की दृष्टि परखते देर नहीं लगी। जितना उन्होंने समझा था, उतना ही केशी और प्रद्युम्न ने भी। लौटते ही वसुहोम को बुलावा भेजा था। मन का सन्देह प्रकट किया। कहा—'मुझे लगता है वसुहोम, केशी और प्रद्युम्न मेरे प्रति उतने ही सन्दिग्ध हैं, जितने मथुराधिपति निश्चिन्त'···। यह शुभ नहीं है।'

वसुहोम चुपचाप खड़ा रहा। केवल आज्ञा की प्रतीक्षा में···जिस तरह मथुरा की राजनीति एक के बाद एक उतार-चढ़ावों और घाटियों से गुजर रही थी, उसमें बहुत तीव्र और संतुलित बुद्धि का प्रयोग आवश्यक था

और वसुहोम अनुभव करता था कि उस तरह सोच-समझ पाना उसके लिए सम्भव नहीं है···। उसे केवल वही करना चाहिए जो वसुदेव कहें, सुझाएं···।

वसुदेव देर तक सोच में पड़े रहे, फिर बोले थे—'तुम्हें इस समय केवल केशी के समीप पहुंचने की चेष्टा करनी चाहिए···।'

'किन्तु देव···?' वसुहोम के स्वर में कुछ हिचक पैदा हुई···वसुदेव ने जैसे उसकी हिचक समझ ली थी···'जानता हूं कि तुम क्या कहना चाहते हो···? यही ना कि सहसा केशी और उनके सहयोगी तुम पर विश्वास नहीं कर सकेंगे···?'

'हां, महामन्त्री···! मैं यही कुछ निवेदन करना चाहता था।' वसुहोम ने उत्तर दिया—'वे सब भली प्रकार जानते हैं कि मैं आपकी सेवा में केवल तत्पर ही नहीं, समर्पित रहा हूं···ऐसी स्थिति में···।'

'वह स्थिति मैं उत्पन्न करूंगा, वसुहोम···! शीघ्र ही वह स्थिति मैं बना दूंगा!'

वसुहोम चकित भाव से देखता रह गया। वसुदेव बोले—'इस समय तुम्हें केवल यही करना है कि किसी तरह उनसे परिचय-सम्बन्ध प्रगाढ़ करने की चेष्टा करते रहो। मैं जानता हूं कि तुरन्त वह तुम्हें विश्वसनीय नहीं मानेंगे, किन्तु आगे जो कुछ मैं करने जा रहा हूं, उसमें तुम्हारी यह भूमिका पर्याप्त उपयोगी रहेगी।'

'जैसी आपकी इच्छा, मंत्रिवर?' वसुहोम ने सिर झुका दिया।



कितनी देर हो गयी होगी···? कक्ष में भेंट के लिए प्रतीक्षित आशी ने अनुमान किया था—बहुत देर···! महाराज कंस तक वह अपनी अगवाई का सन्देश पहुंचवा चुकी थी, किन्तु उत्तर मिला था—'प्रतीक्षा करें! राजन् इस समय विशिष्ट सभासदों से मंत्रणा में व्यस्त हैं।'

बैठ रही थी आशी।

कंस के साथ-साथ चित्रसेन भी कुछ ज्यादा ही व्यस्त हो गया था। देर से दर्शन ही नहीं हुए थे उसके। मिल सकता तो निश्चय ही आशी की महाराज तक पहुंच सहज हो जाती···पर दुर्भाग्य जैसे-जैसे समय टल रहा

है, कैसे-कैसे आशी की व्यग्रता बढ़ती जा रही है। बकुल की सूचना याद है उसे। सन्ध्या समय, मगधराज का रथ मानसी को वापस गिरिव्रज ले जाने के लिए तैयार रहेगा और यह भी जानती है आशी कि मानसी प्रतिरोध नहीं कर सकेगी आज्ञा का···! और वही क्या, कोई भी हो—मगधराज जरासन्ध के आदेश की अवज्ञा करने का साहस नहीं जुटा सकेगा···।

कितनी बार इस व्यग्रता और उतावली में आशी के माथे पर पसीना आया, कितनी बार वह व्याकुल होकर उद्दंड भाव से महाराज के कक्ष में पहुंच जाने की इच्छा हुई होगी···उसे याद नहीं। पर इस सबके साथ यह भी जानती है वह युवराज नहीं है कंस। अब हैं मथुराधिपति। उनके आदेश की अवहेलना तुरन्त राजदण्ड का भागी बना देगी उसे। लगा था कि कुछ शब्दों ने बांधकर रख दिया है उसे! बेबस।

कितने उच्छ्वास लिये—कितने छोड़े—याद नहीं। बस, इतना याद है कि समय बीतता गया था···चित्रसेन गुम।

ठीक तभी सैनिक आ खड़ा हुआ, 'देवी···? तुम महाराज से भेंट चाहती हो ना?'

'हां-हां!' आशी जैसे देर तक मुरझाते रहे पौधे में जल पड़ जाने की तरह जीवन्त हो उठी—'हां, मैं उनकी सेवा में तुरन्त उपस्थित होना चाहती हूं।'

सैनिक मुसकराया, 'तो चलो, बुला रहे हैं तुम्हें।'



सांझ का प्रारम्भ हो हुआ था···आशी पल-पल तीव्र होती श्वास गति को जैसे-तैसे सहेजती हुई सैनिक के पीछे-पीछे कंस के सामने पहुंची।

आशी को वहीं छोड़कर सैनिक बाहर चला गया। कंस ने उसे देखा, मुसकराये, पूछा—'बोलो, अशनिका? क्या समाचार है? तुम्हारी स्वामिनी तो कुशल से हैं ना?'

'प्रसन्न हैं, महाराज···।' आशी ने सिर झुकाया, विनम्र स्वर में उत्तर दिया—।'

'कोई विशेष बात?'

'वह बहुत अस्वस्थ हैं महाराज···', आशी ने भीगे-से स्वर में उत्तर

दिया था—'कितने ही दिनों से आपके दर्शन लाभ की इच्छा कर रही हैं··· संयोग है कि आप राजकाज से समय नहीं पा सके···।'

'मैं स्वयं भी यही अनुभव कर रहा हूं, आशनिका···!' कंस सहसा मानसी के स्मरण से सहानुभूतिपूर्ण हो उठे थे—'देवी मानसी की अस्वस्थता के समाचार ने मुझे दुःख पहुंचाया···।' एक क्षण जैसे वह कुछ सोचते रहे, फिर कहा था—'देवी से कहना हम आज ही किसी समय उनसे भेंट के लिए अवश्य पहुंचेंगे···! वह हमारी प्रतीक्षा करें···।'

आशी प्रसन्न हुई। यह राह मिल गई थी, जिससे तुरन्त मगधराज के दूत को मानसी के हरण प्रयत्न से बचाया जा सकता था। उसने प्रसन्नमन सिर झुकाया, लौट पड़ी।

किस वायुगति से किस तरह और कितनी शीघ्र मानसी के निवास पर आ पहुंची थी, यह उसे स्वयं ही ज्ञात नहीं हुआ था···बस, इतना जानती थी कि वह अपने आपको इस तरह प्रसन्न और हल्का अनुभव कर रही थी जैसे मानसी की जगह ही वह सुख पूर्वक सूचना मिली हो।

जिस पल आशी ने मानसी के कक्ष में प्रवेश किया, वह जैसे जीवनगंध की तरह अनुभव हुई थी—मानसी को। देखते ही मानसी ने आगे बढ़कर उसकी बांहें थाम ली थी, प्रश्नों की एक बौछार आशी पर आ गिरी—'कैसे हैं महाराज···मथुराधिपति के रूप में तूने उन्हें देखा है ना आशी? कैसे लगते हैं वह···? उनका वैभव तो पूर्वापेक्षा बहुत बढ़ गया होगा··? तुझे देखकर क्या बोले? मुझे स्मरण किया या नहीं?···और···'

'बस-बस···! मुझे तनिक चैन भी लेने दोगी देवी···?' आशी चेहरे पर मन्द-मन्द मुसकान लिये बैठी रही—'मैं कुछ समय श्वास तो ले लूं···? दौड़ी चली आ रही हूं राजभवन से।'

आशी के स्वर, स्वर के सन्तुलन, शब्दों के चयन ने पल भर में ही मानसी को जतला दिया था कि कुछ शुभ समाचार ही लायी है वह। कहा था—'हां-हां, तू कुछ पल रुककर कह···! पर मैं सब कुछ सुनना चाहती हूं। वह सब जो तूने देखा, सुना और उन्होंने कहा···।'

आशी एक ओर बैठ रही। चमकती दृष्टि मानसी के चेहरे पर··· हुए, जिस पर उत्तेजना में एक लालिमा बिखर गई थी।



कुछ देर का यह चुप किस उतावली के ज्वार-भाटे से भरा बीता था —दोनों ने ही महसूस किया। फिर आशी ने क्रमशः सब कुछ कह सुनाया था···मानसी यह विचार कर प्रसन्न हुई थी कि महाराज कंस रात्रि को किसी समय उससे भेंट करने का वचन दे चुके हैं···पर वह पीड़ा मन से नहीं छंटी थी कि मानसी को आज नहीं तो कल मथुरा छोड़ना अवश्य होगा !

सभी समाचार देकर आशी ने कहा था—'आज महाराजाधिराज कंस के आगमन की सूचना देकर बकुल को टाला जा सकता है देवी···! किन्तु सदा के लिए उसे टाला जा सकेगा, यह सम्भव नहीं है।'

मानसी ने सुना—बोली नहीं। लगा था कि बहुत कुछ मिला है, पर सब अधूरा ! महाराज कंस से मिलेगी वह, किन्तु फिर कभी नहीं मिल सकेगी···! लगा था कि नियति ने सम्भवतः जितना कर दिया है, वह दान है ! किसी विगत के शुभकर्म का प्रतिफल···।

आशी उठ पड़ी थी—'बकुल आयेगा। मैं उसे सूचना देकर विदा कर दूंगी।'

मानसी ने सुना—फिर अनसुना कर दिया। आशी चली गयी। और मानसी सोचने लगी थी। कैसी विडम्बना की स्थिति···? लगता था कि मृत्युदण्ड को एक दिन के लिए टालकर दण्डप्राप्त बन्दी आनन्द का अजब-सा पीड़ामिश्रित दुःख झेल रहा हो···। इसे पीड़ा कहा जाये या सुख ? निश्चय करना कठिन हो गया है।



वसुहोम जानता था—केशी और प्रद्युम्न के विश्वसनीय आदमियों के बीच खपना बहुत कठिन ही नहीं, लगभग असम्भव होगा। पर वसुदेव की यही आज्ञा थी···! और आज्ञा का निर्वाह उसका सेवकधर्म।

समय लगेगा इसमें···बहुत देर भी लग सकती है, पर वसुहोम को करना यही होगा। धैर्य के साथ दायित्व-निर्वाह में जुटते हुए धीमे-धीमे ही सही, पर करेगा वसुहोम। कुछ उपेक्षा मिलेगी,लोग तिरस्कृत भी कर दें···। पर निर्लज्ज भाव ओढ़कर वह निरन्तर उनसे सम्पर्क करेगा। उनके साथ

कर रहे हैं···। यह अन्धविश्वास उनके लिए ही नहीं, महाराज कंस के विश्वसनीय सेवकों यथा केशी, चाणूर, प्रद्युम्न आदि के लिए भी घातक हो सकता है···। सम्भवतः इसी कारण ये लोग किसी न किसी तरह आपको लेकर वातावरण बनाने में व्यस्त हैं।'

'ठीक है···!' वसुदेव ने गहरा श्वांस लिया, फिर कहा—'मैं तुम्हारी सूचनाओं से प्रसन्न हुआ वसुहोम···! तुम जा सकते हो।'

वसुहोम ने प्रणाम किया—बाहर चला गया।

वसुदेव नयी परिस्थितियों को लेकर नये ढंग से व्यूहरचना में व्यस्त हुए।



बकुल बहुत निराश हुआ।

आशी बोली थी—'देवी तो बिलकुल तैयार हो चुकी थीं, किन्तु क्या करें···। कुछ समय पूर्व ही महाराजाधिराज का सन्देश आया कि वह आज रात्रि देवी से भेंट करने पधार रहे हैं। अब तुम्हीं सोचो बकुल, ऐसी स्थिति में क्या किया जा सकता था?'

बकुल को तुरन्त पता नहीं—क्या कहे···? हकबकाया-सा खड़ा आशी की ओर टकटकी बांधे देखता रहा।

आशी मन ही मन प्रसन्न थी। उसके दांव ने काम किया। जो प्रभाव चाहा था, वही हुआ है। बोली—'आज देवी से भेंट के बाद महाराज कंस क्या कहते-सुनते हैं, सब कुछ इसी पर निर्भर करेगा, गुप्तचर···। अच्छा होगा कि महाराज आयें, मिलें और चले जायें···अन्य कोई आदेश दे बैठे तो मगध-प्रस्थान के प्रस्ताव की योजना पर पुनर्विचार करना होगा।'

बकुल ने सुना। चिन्तित हुआ। कहना चाहता था कि मगधराज तुरंत ही मानसी की वापसी चाहते हैं, किन्तु अनायास ही जिस परिस्थिति का सामना हो गया था उसमें मानसी को सहसा मथुरा से नहीं निकाला जा सकता था। बाध्य होकर कहा था उसने—'ठीक है। मैं कल पुनः आऊंगा। मुझे विश्वास है कि देवी मानसी प्रयत्न करेंगी कि महाराज के किसी नये आदेश में न बंधें।'

'प्रयत्न तो उनका भी यही रहेगा गुप्तचर···!' आशी ने उत्तर दिया

—'स्वयं भी शीघ्रातिशीघ्र गिरिव्रज पहुंचना चाहती हैं। मातृगृह की याद ने उन्हें भी बहुत विचलित कर रखा है।

बकुल सन्तुष्ट हुआ। आशी से विदा लेते हुए पुनः कहा था—'देवी से कहना यथासम्भव मुक्ति का प्रयत्न करेंगे'''।'

आशी ने उसे पुनः विश्वास दिलाया—विदा कर दिया।

रात का प्रथम प्रहर होते ही महाराज कंस आ पहुंचे। आशी प्रसन्न हुई थी उनके वचन-निर्वाह पर। किन्तु मानसी अतिरिक्त रूप से प्रसन्न। स्वागत की पुनः व्यवस्था पूर्व में ही की जा चुकी थी। मानसी ने बहुत शालीन श्रृंगार कर रखा था। निश्चय किया था कि राजा के सामने अब उत्तेजक पोशाक में न आकर प्रयत्न करेगी कि कुलीनाओं जैसी सज्जा में सजी रहे। फिर पड़ेगी कंस की दृष्टि। यह दृष्टि जतला देगी कि कंस के मन में मानसी के लिए कौन-सा स्थान है?

जिस क्षण महीनों से किए जाते रहे कामोत्तेजक श्रृंगार को बदलकर शालीनता और कुलीनता के परिधानों से ढका, उस क्षण अनायास ही एक रोमांच और पुलक से भर उठी थी मानसी। लगता था कि केंचुल बदली है···! मन ही नहीं, शरीर को भी पूर्णतः एकात्म में ढाल लिया है। पर तुरन्त ही अनुभव हुआ था कोई मानसी को उसके अपने अन्तर से उलीचने लगा है···। हर उलीचन पोखर के गन्दे जल से भरी हुई···। अपना ही उपहास अपने पर ही उछलता अनुभव किया था उसने—'विचित्र बात है···। सर्पकेंचुल बदल ले तब क्या विषहीन हो जाता है···? अपने मूल गुण-दोष से परे?'

मानसी का मन हुआ तर्क करे—'असत्य है यह···! वह कोई सांपिन नहीं है। न ही उसने किसी को डसा है।'

'क्या सच ही?' प्रश्न सघन हुआ, फिर उसका रुख प्रहारात्मक हो गया—'अन्तस से उठा ठहाका और गहरा हुआ—अपना दोष-विघ्न पहचान कर भी क्या मानसी यह सोचने का दुस्साहस कर सकती है कि उसने

सर्प धर्म नहीं निभाहा···? महाराज उग्रसेन से कंस को विमुख कर देने का अपराध दोष विष नहीं तब क्या है ?'

'किन्तु वह सब तो महाराज जरासन्ध के आदेश पर हुआ···? 'मानसी ने अपने ही उत्तर को मृतप्राय होते अनुभव किया था। उत्तर मिला था—'···क्या सच ही ? मानसी चाहती तो ऐसा करने के लिए उसे बाध्य किया जा सकता था ?'

मानसी का मन हुआ, कहे—'नहीं !'

पर मन ने साथ नहीं दिया। शब्द जनमते-जनमते किसी गर्भ के नष्ट हो जाने की तरह बह गये। वे कभी जनम नहीं सकेंगे। भला बांझ आत्माओं से सत्य का जन्म हुआ करता है ? मानसी तो उन स्त्रियों में से है जो केवल शरीर से जी रही हैं···। आत्महीन होकर। यदि कहीं आत्म शेष रहा है तो केवल बुद्धि संचालित यन्त्र की तरह···। उसका अपना कोई अस्तित्व नहीं रहा।

नहीं रहा या मानसी ने नहीं रहने दिया···?

जो भी हो—पर सत्य यही है ? एक थप्पड़ की तरह निष्कर्ष कनपटी पर आ बैठा था, फिर समूचे शरीर को झकझोर गया। इस झकझोरन ने मुसकान छीन ली।

बहुत प्रयत्न किया था कि शालीन परिधानों में सजी मानसी उसी भव्य, दीप्तिमयी मुसकान को चेहरे पर सजोये रह सके—पर सम्भव नहीं हुआ। इसके विपरीत बहुत प्रयत्न के बावजूद वह केवल उस मुसकान को ही चेहरे पर उगा सकी थी, जिसमें पूर्णतः नकलीपन था···। व्यावसायिक मुसकान ! वही मुसकान, जिसकी सीढ़ियों पर चढ़कर उसने कंस के भीतर बैठी सत्ता मोह को अधिक पिपासु बनाया था।

आशी कंस का स्वागत करती हुई मानसी के विशेष सज्जित कक्ष में लायी थी मथुराधिपति को···।

वे आये, लगा था कि नई मानसी को देख रहे हैं···।

और मानसी···? उसने भी अनुभव किया था—नये कंस सामने हैं···।



शालीनता के सलज्ज वैभव से भरी मानसी···।

और राजगरिमा के गौरव से ओतप्रोत कंस···।

वे आमने-सामने हुए। ठिठके, एक-दूसरे को प्रथम परिचय-सी दृष्टि में निहारा, कुछ सहमे, मुसकराये फिर हंस पड़े···।

सब कुछ इस तरह हुआ था जैसे न कुछ पूर्वायोजित हो, न कुछ असहज···बल्कि सब सहज। इसके विपरीत भी कुछ ऐसा था जिस पर आयोजित का महीन पर्दा पड़ा हुआ···। इस पर्दे के पार तक देखने के लिए दोनों के ही भीतर एक छटपटाहट।

'हमें खेद है मानसी···कि तुमसे भेंट का अवसर ही नहीं मिला···।' वह बोले थे। मानसी ने सुना। अनुभव हुआ जैसे इस बोलने मे भी एक विशिष्ट राजभाव जनम आया है। इस राजस्व ने कही किसी स्तर पर मानसी को अनुभव कराया जैसे वह प्रेमी कंस के सामने नही, मथुराधिपति के सामने है। हर बोल नपा-तुला है, स्वर का आरोह-अवरोह विशिष्ट प्रकार की भाव मुद्रा से नहाया हुआ। हर ओर स्वयं मानसी की हर भाव मुद्रा अत्यधिक अहंकार के बादलों से भरी हुई।

मानसी की इच्छा हुई थी जल की तरह बरस पड़े। रिक्त कर दे इन बादलों को···।

और कंस ने भी चाहा था कि स्वर के राजस का आरोह अवरोह भुला कर केवल संगीत बन जायें। सहज, स्वतः अवतरित जल धारा जैसे।

उन्होंने अपने-अपने को, अपने आप की स्थितियों पर ही छोड दिया था। यन्त्रवत् एक-दूसरे के समीप आये थे, फिर परस्पर आलिंगनबद्ध हो गये थे···शब्द होते हुए भी शब्दरिक्त रहकर। बहुत कुछ न कहना चाहकर भी बहुत कुछ कहते हुए···।

कस ने स्पष्टीकरण की तरह रटे रटाये शब्द उंडेल दिये थे मानसी के सामने···किस तरह, किन-किन अवरोधात्मक स्थितियो का तुरन्त सामना करना पड़ा था उन्हे···और किस तरह इस समय भी वह अवरोधमुक्त नही हो सके थे···आदि।

उत्तर में मानसी ने अपनी विरहव्यथा उड़ेल दी थी कि वह किस तरह व्यग्र होती जा रही थी ? महाराज कंस के दर्शन न पाकर उसने अपने

आपको जैसे जड़ अनुभव करना प्रारम्भ कर दिया था'''आदि।

देर बाद वे परस्पर स्पष्टीकरणों से मुक्त हुए।

क्या सचमुच मुक्त हो सके थे'''? सम्भवतः नहीं। बस, इस सुख से सन्तुष्ट हो लिये थे कि उन्होंने परस्पर कुछ निबाह दिया है। अभिवादन की तरह नियम जैसा। अन्त में मानसी ने कहा था—'महाराज'''! एक इच्छा थी, आज्ञा दें तो निवेदन करूं?'

कंस के दोनों चौड़ी हथेलियों में उसका चेहरा थामा, शब्दहीन होकर दृष्टि से कह दिया—कहो?

'कुछ समय के लिए मेरी इच्छा मथुरा से कहीं अन्यत्र जाकर रहने की है'''।' मानसी ने न चाहते हुए भी कहा था। जानती थी कि बकुल भले ही चला गया हो, किन्तु मानसी के निवास में किसी न किसी सेवक-सेविका को उसने अपना समाचार-सूत्र अवश्य ही बना रखा होगा'''। यह सूत्र बकुल तक यह समाचार पहुंचा सकेगा कि मानसी ने मुक्ति की प्रार्थना की थी'''। और उसे विश्वास था कि कंस अनुमति नहीं देंगे।

कह गयी थी वह, पर लगा था कि हृदयगति बढ़ गयी है! एक भय बटोरे हुए। कहीं ऐसा न हो कि कंस स्वीकृति दे दें'''।

पर मन का एक हिस्सा ऐसा भी था जो कह रहा था—नहीं'''। ऐसा नहीं कहेंगे कंस।

कंस सोच में पड़ गये थे: शांत। भयभीत मानसी उनकी ओर देखती रही। कंस के होठों से जो शब्द बाहर आयेंगे, वही मानसी के भाग्य निर्णायक होंगे। कुछ देर बाद मथुराधिपति ने कहा था—'जानता हूं ऐसा तुमने क्यों विचारा है'''?'

मानसी चुप रही। हृदय की गति को जैसे-तैसे सम्भालती-सहेजती हुई।

'तुम सम्भवतः हमारी अनुपस्थिति के कारण विचलित हो गयी हो।' कंस बोले थे—'पर'''देवी'''। बहुत समय नहीं लगेगा, जब सब कुछ ठीक हो जायेगा। मथुरा गणसंघ के सभी श्रेष्ठ पुरुष हमारे सहयोगी हो चुकेंगे'''। क्या तनिक-सा समय तुम हमसे परे रहकर नहीं काट सकती?'

परे'''? मानसी ने धक्का अनुभव किया था। समझ नहीं सकी। क्या

कंस उसे चले जाने की स्वीकृति दे रहे हैं•••!

या उन्होंने कहा है कि मानसी यहीं रहकर उनके लिए प्रतीक्षा करे ?

कंस के अगले शब्दों ने सब कुछ स्पष्ट कर दिया था—'एक तुम ही हो देवी, जिसके सामीप्य में हम कुछ समय के लिए स्वयं को भारमुक्त अनुभव कर सकते हैं•••। यदि तुमने मथुरा छोड़ दी तो किस जगह अशान्त—थके मन को शांति दे सकेंगे हम ?'

मानसी ने एक गहरा श्वास लिया। जी हुआ कि जोरों से हंस पड़े। पर कठोरता से स्वयं को वश में रखा। बोली—'जैसी आपकी इच्छा राजन् •••। मानसी आपके लिए प्रतीक्षा की पीड़ा को भी सुखपूर्वक काट सकती है •••! मेरे समर्पण और विश्वास में बहुत शक्ति है राजन् !'

'मुझे तुमसे यही अपेक्षा थी मानसी•••!' कंस ने भावावेश में कहा, फिर उसे पुनः आलिंगन में भर लिया। और मानसी इस तरह उन विशाल भुजाओं में बंधी रह गयी थी जैसे अपने आपको उसने तीरों के मूसलाधार में किसी चट्टान के नीचे छुपा लिया हो। सुरक्षा के अजेय दुर्ग में रक्षित अनुभव करने लगी थी स्वयं को।

कंस ने उस रात्रि पूरा एक प्रहर वहीं काटा था, फिर राजनिवास लौट गये।



वे सब एकत्र हुए थे—प्रद्युम्न, केशी, चाणूर आदि। सब चिन्तित थे —सब व्यग्र। लग रहा था कि चौसर के पासे आपोंआप बदलने लगे हैं।

केशी ने अपने गुप्तचरों से जो समाचार प्राप्त किये, उसके तुरन्त बाद वह प्रद्युम्न से भेंट करने जा पहुंचा था। सदा की तरह शालीनता की ओट में देर तक अपने आपको छिपाये रहे थे मन्त्री प्रद्युम्न। सहसा खुलकर सब कुछ उगल देना उनके स्वभाव में नहीं था। होता तो मन्त्रिपद तक कैसे पहुँच पाते। पहले केवल केशी को सुना था•••उग्रस्वभाव सेनानायक•••। पल भर में जिस तरह हाथ अस्त्र की ओर जाता था, उसी तरह जिह्वा व्याकुल होकर शब्द फेंकने लगती थी। केशी स्पष्टवादी न होकर कई बार केवल अहंकारमद से चूर सैनिक भर दीखते थे! वीरता को धृष्टता में, पराक्रम को शब्दों से पार शरीर चेष्टाओं में व्यक्त करके स्वयं को आतंक

का कारण बनाये रहे थे वह। कभी यह सब सहज भाव से स्वभाव में लाना प्रारम्भ किया था, अब वह सहज-स्वभाव बन गया था। न चेष्टा करनी पड़ती थी, न किसी तरह की इच्छा! सब कुछ सहज होकर व्यक्त होने लगता।

उस दिन भी हुआ। रात्रि के जिस प्रहर ज्ञात हुआ कि मथुराधिपति कंस गन्धर्व-कन्या मानसी के निवास में जा रहे हैं, केशी ने तुरन्त मिलने के लिए आज्ञा चाही थी, किन्तु आज्ञा नहीं मिली। कंस ने कहलवा दिया था—'जो वार्ता करना चाहे, प्रातः मिलकर करें···। इस समय हम व्यस्त हैं···! कहीं, अन्यत्र जाने का कार्यक्रम निश्चित कर चुके हैं।'

केशी उत्तेजित हो उठे। पर यह उत्तेजना कंस के निर्णय के सामने ऐसी ही थी जैसे किसी विशाल जलसागर में मछली तड़पे, कुछ पलों के लिए जल के एक छोटे-से क्षेत्र में उथल-पुथल मचा दे। पर मगरमच्छ बेखबर···!

केशी की यह तड़पन मन्त्री प्रद्युम्न के सामने तीव्री हुई। वह सीधे मन्त्री के निवास पर पहुंचे। समाचार भिजवाया—'सेनापति तुरन्त भेंट करना चाहते हैं।'

प्रद्युम्न ने सूचना भिजवायी—'स्वागत है।'

और केशी लगभग दौड़ते हुए पहुंचे। तनावग्रस्त चेहरा, सुर्ख, दहकती आंखें, उससे कहीं ज्यादा रह-रहकर माथे पर खिंचती रेखाओं ने प्रद्युम्न को तनिक भी विचलित नहीं किया। पूछा—'क्या बात है सेनापति···? देखता हूं बहुत उत्तेजित हैं।'

उत्तेजित होने का कारण होता है मन्त्रिवर···।' केशी ने आसन ग्रहण किया, फिर जैसे क्रोध की ज्वाला से भरे, भावे में शब्द उगलने प्रारम्भ कर दिये—'पल भर पहले मथुराधिपति से भेंट की प्रार्थना की थी—यह जानकर बहुत दुःख हुआ कि उन्होंने समय नहीं दिया···। मुझे लगता है कि महाराज कंस, विलासिता पर निसार होने भर को शासन सम्भाल रहे हैं—यह नहीं देख पा रहे कि जिस पृथ्वी पर राजसिंहासन रखा हुआ है वह कहां तक खोखली है।'

प्रद्युम्न ने केशी को भी विचलित हुए बिना उत्तर दिया—

शांत हो, सेनापति···? इस बीच ऐसा क्या हो गया है, जिसने आपको इतना व्यथित और चिन्तित ही नहीं, उत्तेजित कर दिया है ?'

'महाराज के बाद आप ही हैं, जिनसे वह सब कहा जा सकता था और वही कहने मैं आया हूं।' केशी ने कहा—'वसुदेव से जितने भी समाचार मथुराधिपति को मिले हैं, वे असत्य हैं। सत्य यह है वसुदेव की गणसंघ-यात्रा पूर्णतः उनके अपने राजनीतिक उद्देश्य से रही।'

प्रद्युम्न ने सुना। लगा उत्तेजना में केशी स्पष्टतः अपने को व्यक्त नहीं कर पा रहे हैं। क्रोधी स्वभाव और असन्तुलन मनस्थिति में यह सहज होता है। तीव्रबुद्धि मन्त्री ने समझ लिया। शांतिपूर्वक पुनः कुरेदा—'स्पष्ट कहें, सेनाधिपति···। वसुदेव की यात्रा में राजनीतिक उद्देश्य तो निहित था ही—स्पष्ट है···! यह यात्रापूर्व आप भी भली प्रकार जानते थे, मैं भी और महाराज कंस भी। इसमें नया क्या है ?'

'नया यह है कि वसुदेव की यात्रा महाराज कंस के हित में नहीं, बन्दी राजा उग्रसेन के हित में रही।'

प्रद्युम्न ने सुना। उत्तेजित भी नहीं होना चाहते थे, चौंकना भी पद-योग्य गरिमा न होती, फिर भी अकचका गये। कुछ घबराकर प्रश्न किया —'मैं अब भी नहीं समझा।'

'वसुदेव ने यात्रा में गणसंघ प्रमुखों से बातें कुछ की हैं, मन्त्रणा कुछ और की है।' केशी ने उत्तर दिया—'मेरे गुप्तचर अभी-अभी विभिन्न जनपदों से समाचार लेकर आये हैं। वसुदेव ने उन्हें उचित समय की प्रतीक्षा करने के लिए कहा है—उस समय तक संयमपूर्वक शांत बने रहकर कंस को समर्थन देते रहने और सैन्य दृष्टि से गुपचुप तैयारियां करते जाने की सलाह दी है···।'

प्रद्युम्न की आंखें विस्मय से फैल गयीं। वसुदेव तीव्रबुद्धि हैं—जानते थे, पर यह नहीं कि राजनीतिक षडयन्त्र भी कर सकते हैं···। दृष्टि में भय उतर आया। शरीर बेचैनी से भर उठा। उठे और कक्ष में चहलकदमी करने लगे।

केशी ने जो सूचनाएं दी, उन्होंने विश्वास दिला दिया कि महाराज कंस राजा होकर भी राजा बने रह सकेंगे—इसमें सन्देह था।

देर तक सोचने के बाद पूछा था—'अब ?'

'अब क्या हो सकता है मन्त्रिवर···!' केशी ने स्वर सहज किया—'मात्र यही राह है कि वसुदेव को तुरन्त दण्डित किया जाये···। उन्हें कारा-वास भोगना चाहिए···। राजद्रोह का एकमात्र उचित दण्ड यही है।

'नहीं-नहीं, केशी··। यह नहीं हो सकता।' प्रद्युम्न ने टोक दिया।

'तब क्या हो सकता है ?' केशी उसी तरह उत्तेजित हो उठे—'तब क्या सच कुछ जानकर भी अनजान बने रहना शुभकर होगा ?'

'हां···।' प्रद्युम्न सहसा थम गये। निर्णयात्मक स्वर में कहा था उन्होंने—'इस तरह वसुदेव को बन्दी बनाने की जन-प्रतिक्रिया बहुत बुरी होगी सेनापति। वसुदेव केवल वृष्णिवंशियों के प्रमुख नहीं, मथुराधिपति के महा-मन्त्री भी हैं। सम्पूर्ण गणसंघ में उनकी छवि एक आदर्श और सज्जन पुरुष की है···। उन्हें लेकर ऐसा कदम उठाने के पूर्व उसकी प्रतिक्रिया पर विचार कर लेना कहीं अधिक अच्छा रहेगा।'

'किन्तु मन्त्रिवर···कोई और राह ?'

'वही खोजनी होगी !' प्रद्युम्न पुनः चहलकदमी करने लगे। लगता था कि उनका हर कदम असन्तुलन से भर उठा है। दृष्टि में बिखरा सन्नाटा समूचे बदन में उतर आया है।

केशी ने आसन पुनः ग्रहण कर लिया। माथा थाम कर बैठ गए।

प्रद्युम्न थोड़ी देर बाद पुनः बोले थे—'महाराज कंस भी सब सुन-जानकर वह निर्णय नहीं कर सकेंगे, जो तुमने विचारा है—। वह भी वसुदेव का जन-प्रभाव अच्छी तरह जानते-समझते हैं···। ऐसी स्थिति में एकमात्र राह यही है कि वसुदेव और किसी गणसंघ नायक से हुई वार्ता का प्रमाण जुटाया जाए !'

'उससे क्या होगा ?' केशी ने प्रश्न किया।

'बहुत कुछ हो सकता है !' प्रद्युम्न ने कहा—'एक तो वसुदेव पर मथुराधिपति द्वारा किया गया अन्धविश्वास टूटेगा, दूसरे उसके पूर्व कोई राह निकाली जा सकेगी जिससे वसुदेव की उस जन-छवि को समाप्त किया जा सके जो अब तक टूटी नहीं है !

'पर किस तरह ?

'अन्य विश्वस्त सहयोगियों को भी बुला लो—विचार कर देखते हैं···।' प्रद्युम्न ने जवाब दिया था···

उत्तर में दौड़ गए थे दूत। थोड़ी देर बाद वे सभी एकत्र हो गए··· षड्यंत्रों के निरंतर चक्र मे एक नए षड्यंत्र की रचनारंभ हुआ !



बहुत सोचा-बहुत समझा पर राह नही। वसुहोम की सूचना ने जितना चौकाया था उन्हे, उससे कही अधिक इस विचार ने पीडा पहुचायी थी कि महाराज उग्रसेन के लिए सब कुछ करना चाहकर भी कुछ नही कर सकेंगे वसुदेव !

नियति भी कितने-कितने रंग लिए प्रकट होती है? उन्होने निराश होकर चुप हो जाना ही श्रेयस्कर समझा था। जितना वश में था, किए जा रहे थे फिर अगर जो वश में नही—वह घटता है, सब भाग्याधीन। यही मानकर अपने आपको धैर्य दे दिया। शान्त हुए।

दो दिन पूर्व उग्रसेन के ही भोजवंश की कन्या देवकी[1] के स्वयंवर की सूचना मिली थी उन्हे। देवकी को अनेक बार देखा था वसुदेव ने। उनके सरल, सहज और प्रभावी व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित भी हुए थे। पिता की ही तरह शान्त और सरलचित्त थी बेटी। उस समय विचार किया था कि जिस घर में भी पहुंचेगी पति और परिवार को सुख-शान्ति देगी···उत्साहित थे उस सुन्दरी का विवाह देखने के लिए···।

किन्तु वसुहोम की सूचना ने समूचा उत्साह झुलसा डाला। अब जायेंगे तो सही, किन्तु उस उत्सुकता, उत्साह से नही—बल्कि केवल राजकीय औपचारिकता निवाहने। स्वयंवर मे कुलोत्तम पुरुष सक्रिय रूप से भाग लें—यह परम्परा थी। इसी परम्परा का निर्वाह करेंगे वसुदेव !

यों भी वसुदेव का जाना अनिवार्य था। देवकी महाराधिराज कंस की चचेरी बहिन हैं। एक तरह से देवकी का विवाह महाराज कंस के अपने परिवार का शुभोत्सव है। महामंत्री के नाते भी वसुदेव की उपस्थिति

---

१. देवकी···भोजवंशी मयूराधिपतियों के कुल की बेटी थीं। राजा आहुक के पुत्र देवक की बेटी, राजा उग्रसेन उनके चाचा होते थे। इसी नाते वह कंस की बहिन हुई।

अनिवार्य।

रह-रह कर परिजनों का स्मरण भी हो आता। पहले ऐसा कभी नहीं हुआ'''। वसुदेव सोचते और चकित होते। इन्हीं दिनों, विशेषकर इस समाचार के बाद कि उनकी चौसर के पांसे बदल सकते हैं—यह स्मरण किस कारण आने लगे...?

संभवतः अनिष्ट की आशंका ने ही मन को विषाद से भर दिया है। तनिक-सी आहट होते हो लगता है कि महाराज कंस का बुलावा आ पहुंचा'''। उस बुलावे का अर्थ होगा वसुदेव को भी कारावास की उन्हीं सलाखों में बन्द कर दिया जाए, जिनमें महाराज उग्रसेन बन्द हैं'''। उनके अन्य समर्थक अवश पड़े हैं।

जैसे-तैसे मन को धीरज देते—मनुष्य-कर्म ही उसके वश में होता है। उसके परिणाम सब अनन्त महाशक्ति के हाथ। सोचकर तात्कालिक सन्तोष पा जाते हैं वसुदेव'''पर क्या सच ही यह विचार सन्तोष दे पाता है।

नहीं!

इसके विपरीत यही विचार है जो उन्हें बार-बार याद दिलाने लगता है कि कहीं कुछ ऐसा है जो होने से रह गया है'''। अजाना-अनसमझा।

दिन कटते रहे थे'''रातें भी। दोनों में खामोशियां, पर हर खामोशी आशंकित भय की कालिख में पुती हुई'''। इसमें आशा की कोई किरण, कहीं नहीं चमकती'''। सब ओर केवल कालछाया बिखरी हुई है'''। केवल अशुभ।



सम्पूर्ण रात्रि के सलाह-सुझावों ने भी किसी निश्चित परिणाम पर नहीं पहुंचाया था उन्हें, वसुदेव को लेकर मथुराधिपति से कुछ कहना-सुनना ऐसा ही होगा जैसे उन्हें चौंकाया ही न जाए, विस्मित कर दिया जाए। स्वयं महाराज कंस के गुप्तचरों ने उन्हें समाचार दिया था कि वसुदेव ने संघयात्रा के समय जिन-जिन वंश-प्रमुखों, अधिपतियों से भेंटवार्ताएँ की हैं, वे सभी किसी न किसी रूप में नए महाराज कंस के प्रति शुभेच्छा का वातावरण निर्मित करने वाली रही हैं'''। ऐसी स्थिति में यदि उन्हें वसुदेव ने षड्यंत्र किया—सूचना दी जाएगी, वह सहसा विश्वास नहीं

सकेंगे।

प्रद्युम्न बोले थे—'जब तक पूरी तरह प्रमाण न हों, कंसराज के सामने इस तरह का वार्तालाप करना कितना घातक हो सकता है, यह विचार कर लेना उचित होगा सेनापति'''। उनके उग्र स्वभाव और उद्दंड व्यवहार से हम सभी अपरिचित नहीं हैं। मुझे आशंका है कि राजा उलट कर हम पर ही बरस पड़ेंगे।'

'तब?' केशी ने शान्तिपूर्वक सुना। चिन्तित होकर मन्त्री का चेहरा देखने लगे।

'तब एक ही मार्ग है—सप्रमाण किसी प्रत्यक्षदर्शी को उपस्थित करो'''।'

'प्रयत्न कर देखता हूं मन्त्रिवर '''।' व्यग्र भाव से केशी ने उत्तर दिया था। चिन्ता सघन हो उठी थी। भला उनको अपनी तरह सभी तो जानते हैं मथुराधिपति कंस का उग्र और क्रोधी स्वभाव! कौन, किस साहस को जुटाकर केशी के पक्ष में बोलने आएगा '''? फिर वसुदेव के विरुद्ध! मन जितना घबराया, उससे कहीं अधिक इस विचार ने डरा दिया कि प्रद्युम्न का कहा असत्य नहीं है! उग्र राजा आवेश में आकर कहीं अविश्वास कर बैठे तब केशी के लिए ही महंगा पड़ जाएगा मामला!

चाणूर और मुष्टिक—ऐसी हर षड्यंत्र सभा में उपस्थिति तो देते थे, किन्तु लगता था कि केशी और प्रद्युम्न की वार्ता में सम्मति देने के योग्य नहीं है। शरीर बलिष्ठ पाया था उन्होंने। शक्ति-सामर्थ्य भी अद्भुत थी पर बुद्धि उतनी गतिशील नहीं हो पाती थी, जितनी इस तरह की वार्ताओं में चाहिए होती है।

प्रद्युम्न उठ पड़े थे। कहा—'मैं जानता हूं सेनापति'''। तुम सभी के शुभार्थ विचार कर रहे हो, किन्तु किसी का अशुभ करने के पूर्व अपने शुभाशुभ को लेकर विचार कर लेना अधिक उचित होता है।'

केशी चुप रहे। प्रद्युम्न निरन्तर बड़बड़ाते गए'''। प्रमाण'''। वसुदेव को लेकर बिना किसी प्रमाण के की जाने वाली वार्ता मथुराधिपति के लिए विस्मयकारी तो हो सकती है, किन्तु विश्वसनीय नहीं'''।'

केशी ने निराश भाव से एक गहरा श्वांस लिया। कहा, 'ठीक है

मंत्रिवर···। यदि आप यही कहते हैं तो प्रयत्न करूंगा कि शीघ्र ही सप्रमाण किसी को महाराज के सामने उपस्थित कर दूं···।'

प्रद्युम्न ने सुना। पीठ किए हुए थे उन सभी की ओर से। मुड़े नहीं। कुछ तेज गति वाली पदचापों से अनुमान किया—वे सभी जा चुके हैं।

□

बकुल चुपचाप सुनता जा रहा था···

पहले आशी बोली थी, फिर मानसी···दोनों के ही चेहरों से लेकर स्वर तक बेबसी का ऐसा स्वाभाविक नाट्य छिपा था, जिसने बकुल को अविश्वास करते हुए भी अविश्वास नहीं करने दिया।

'यह बड़ी दुविधा की स्थिति है गुप्तचर···।' सबसे पहले मानसी ने कहा था—'मुझे विश्वास नहीं था कि महाराज कंस मेरी इच्छा को उस तरह अस्वीकार देंगे—।'

बकुल ने चकित, अविश्वसनीय दृष्टि से उसे देखा।

मानसी ने प्रश्न समझा। उत्तर दिया—'मुझे बहुत आश्चर्य हुआ गुप्तचर कि उन्होंने कहा—तुम कुछ समय यहीं रहोगी मानसी, ताकि मैं तुम्हारे पास यदा-कदा आकर अशांति के इस कुछ समय के कुछ पल काट सकूं—। ऐसी स्थिति में मैं कोई भी निर्णय नहीं कर पा रही हूं और निर्णय तुम्हीं पर छोड़ती हूं—मुझे क्या करना चाहिए और क्या नहीं?'

बकुल परेशान हो गया था। ऐसे लचीले और नाजुक राजकीय मामले में भला वह क्या कह सकते है? पर चिन्ता ने उसे भी बौखला दिया था। विचित्र स्थिति बनी। एक ओर था मगधराज का आदेश कि मानसी को ले आया जाए—और दूसरी ओर महाराज कंस की यह इच्छा कि मानसी कुछ समय के लिए मथुरा न छोड़े—। वह बोलता, पर मानसी ने निर्णय करना उसी पर छोड़कर उसे बहुत कठिनाई में डाल दिया—।

बोल नहीं सका था बकुल। चुपचाप बैठा रह गया।

तभी आशी कहने लगी थी—'मैं तो स्वयं चिन्तित हो रही हूं। क्या किया जाए और क्या नहीं—? एक ओर मगधराज का आदेश है, दूसरी ओर महाराज कंस की इच्छा—।' उसने दृष्टि बड़ी करुणामयी बना ली थी। ऐसे जैसे बकुल से कह रही हो—तुम और हम ···

उलझन में पड़ गए हैं—। एक ऐसी स्थिति, जब दो राज्यादेशों के बीच क्या उचित होगा और क्या अनुचित—यह निर्णय करना आवश्यक हो गया हो—। और ऐसी निर्णायक शक्ति भी किसी के पास न हो, निर्णय क्षमता भी—।

बकुल बहुत कुछ कहना चाहकर भी आशी और मानसी के शब्दों में दबा रह गया—। उसे अनुभव हुआ जैसे दोनों ही स्त्रियों की बेबसी ने उसके शब्दों को गले में ही दबोच डाला है। इस कदर शक्ति से कि वे कसमसा भी नहीं सकते।

'बोलो, गुप्तचर—। तुम्हीं सम्मति दो !' मानसी ने उसकी दुविधा-पूर्ण मनस्थिति का लाभ उठाया। उसे अधिक दबा दिया।

बकुल ने एक गहरा श्वास छोड़ा। हड़बड़ाया हुआ-सा कभी मानसी और कभी आशी को देखता रहा।

'कुछ तो कहो ?'

'वही सोच रहा हूं...' जैसे-तैसे बकुल के होठों से शब्द फूटे।

कुछ पलों के लिए तीनों को ही चुप ने घेर लिया। अन्त में बकुल ने कहा था—जानता हूं कि खाली हाथ मगध लौटकर सम्राट की उपस्थिति में खड़े रहना भी कष्टकर हो जाएगा, पर—किया भी क्या जा सकता है ? मैं तुम्हारी स्थिति समझ सकता हूं देवी···। मथुरा की सीमाओं पर महाराज कंस ने कठोर सैनिक व्यवस्था कर रखी है। तुम सभी की सुपरिचित हो। तुम्हारा मथुरा से निकलना, तुरन्त ही मथुराधिपति तक सूचना बनकर जा पहुंचेगा···। और मैं ही नहीं संभवतः मगधराज भी कभी नहीं चाहेंगे कि किसी भी रूप से तुम मथुराधिपति के सन्देह का कारण बनो।'

मानसी रुआंसी हो उठी—'वही तो···। इस चिन्ता ने मुझे ठीक तरह विश्राम भी नहीं करने दिया है गुप्तचर···। मैं प्रतिक्षण मातृग्रह के स्मरण से व्यग्र रही हूं, और प्रतिक्षण इस आशंका ने मुझे भयग्रस्त किया है कि कहीं किसी भी रूप में मैं महाराज कंस की दृष्टि में अविश्वसनीय न हो जाऊं।'

बकुल ने सुना, फिर कुछ निश्चय किया। उठते हुआ बोला था—'ठीक है, मैं चलता हूं। मगधराज को सारी सूचना पहुंचाकर उन्हीं से

आज्ञा लूंगा कि अब वह जैसा आदेश करें; वैसा ही किया जाए।'

मानसी को लगा था कि हृदय पर कुछ दिनों से रखी शिला अचानक गल गयी है···। बहुत हल्कापन अनुभव होने लगा है उसे। श्वांस अवरोध सहसा थम गया है। मन-शरीर सभी तनावमुक्त हुए।

आशा भी काफी कुछ सहज हुई। पर पूरी तरह नहीं—बकुल जिस गति से जाएगा उसी गति से गिरिव्रज का कोई नया आदेश लेकर लौटेगा ···। उस आदेश के शुभाशुभ होने का निश्चय नहीं किया जा सकेगा···। पर तुरंत सन्तोष था—जरासन्ध के आदेश से कुछ समय के लिए ही सही, पर मुक्ति मिल गयी है।

बकुल ने विदायी ली। दोनों उसे छोड़ने निवास के गुप्त द्वार तक गयी फिर बिना कुछ कहे बोले लौट पड़ी। बीच में अनेक बार उन्होंने एक-दूसरे को देखा था, जोर से हंस पड़ना चाहती थी किन्तु लगता था कि हंसी मन के भीतर है होठों तक आते-आते वापस लौट जाती है। अभी जरा-सन्ध के अगले आदेश की प्रतीक्षा उन्हें करनी है!

और अगला आदेश क्या होगा—यह अनिश्चित···।



अनिश्चित क्या है उसमें—? स्पष्ट है। या तो मगधराज उसे कंस के आदेश-इच्छा की अवहेलना कर देने को कहेंगे या फिर हो सकता है कि कंस को इच्छानुसार कुछ समय चलते रहने के लिए कहला भेजें।

कुल दो ही संभावनाएं थी—। मानसी ने अपने विश्राम कक्ष में आकर पलकें मूंद ली थी—पर मस्तिष्क में उठते-गिरते ज्वार-भाटे से मुक्ति नहीं पा सकी। कुछ आशंकाएं रह-रह कर मन मस्तिष्क को झिझोंड़ जाती हैं—

हो सकता है कि मगधराज उसे लौट आने को कह दें—। और यह भी हो सकता है कि मगधराज सदा-सर्वदा के लिए उसे कहीं, किसी और नगर-ग्राम में बस जाने का आदेश दे दें—? यह संभव नहीं है कि मगध-राज उसे मथुरा में रहने देंगे—। राजनीति-चक्र यही कहता है! उपयो-गिता के अतिरिक्त उसमें व्यक्ति या सत्ता का कोई महत्त्व नहीं होता। यह सनातन परम्परा। इस परम्परा से कोई सन्तबुद्धि राजा भले ही विरक्त

भाव ओढ ले, किन्तु जरासन्ध जैसे सम्राट का विरक्त होना असंभव।

और यदि वैसा कुछ भी हुआ तब मानसी के उन स्वप्नों का क्या होगा जो उसने अपने भविष्य को लेकर सजो लिए हैं—

संजोए हैं या अनायास ही उसके मन-मस्तिष्क में आ बैठे हैं ये स्वप्न···।

मानसी फिर बेचैन होने लगी। लगा कि बहुत अधिक विचार रही है अपनी सामर्थ्य से अधिक। अपने वांछित की सीमाएं तोड़ती हुई। अपने भाग्य को बदलने की चेष्टा में रत केवल मूर्खभाव से हृदय संचालित स्त्री···।

जो सोचा है सो सम्भव नहीं···। जो सोच रही है सो भी असम्भव···। और जिस स्वप्न को संजोया है, वह मात्र भावुकता···। जिस विचार से व्यग्र है—वह विचार ही उस जैसी स्त्रियों का अधिकार नहीं!

कितनी अनधिकार इच्छा है मानसी की? मथुराधिपति की अंकशायिनी गणिकावत स्त्री होना और बात है—सिंहासन का हिस्सा बन जाना और बात···। और मानसी ने गणिका होते हुए भी वह दुस्साहपूर्ण विचार मन-माथे में बिठा लिया है। केवल मूर्खता···। अपितु मूर्खता से भी अधिक यदि कुछ होता है तो वह!

मानसी ने पलकें खोलीं। उठी और खालीपन सजोये हुए कक्ष में यहां-वहां घूमने लगी। नहीं जानती थी कि क्यों घूम रही है? यह भी ज्ञात नहीं कि घूम रही है ··बस, लग रहा था कि मानसी को न चाहते हुए भी केवल शरीर चेष्टा से चलते रहना ठीक लग रहा है! शायद थकान शरीर मे भी घर कर जाये और फिर मानसी विश्राम कर सके···।

कैसे और कब तक यह हो सकेगा—यह भी मानसी को ज्ञात नहीं। केवल इतना ज्ञात है कि खौलते हुए मानस को शान्त रखने के लिए कभी-कभी ऐसी अनियन्त्रित स्थिति मे अपने आप को छोड़ देने से शान्ति मिलती है।

शान्ति पा सकेगी या नहीं···? यह भी नहीं सोचा। केवल यह सोचा कि जो अच्छा लग रहा है, वही करती जाए!

देवकपुत्री के स्वयंवर का दिन आया···। कंस ही नहीं—समूची मथुरा-नगरी व्यस्त हो गई थी। दूर-सुदूर के अनेक राजा और राजपरिवारों के लोग स्वयंवर में भाग लेने उपस्थित हुए सब ओर उत्साह दीखता था, उससे कहीं अधिक उल्लास···।

पर वसुदेव जानते थे कि सारे उत्साह-उल्लास के भीतर जैसे एक नदी तिर रही है। पीड़ा और दुख से भरी नदी। कैसी विचित्र स्थिति थी यह ···? देवक के सगे भाई राजा उग्रसेन बन्दीगृह में थे और देवकी का स्वयंवर रचाया जा रहा था! कंस के मन मे कहीं कुछ ममत्व शेष रहा है यही कुछ देखना-समझना चाहते थे···आशा थी कि कम-से-कम इस अवसर पर महाराज उग्रसेन को कंस अवश्य ही कारामुक्त कर सकेंगे। बन्धन भले ही लगा दें कि उग्रसेन कुछ कहेंगे, बोलेंगे नहीं—पर भतीजी के विवाह में वह भाग ले सकेंगे···।

स्वयंवर समय तक व्यग्र भाव से ऐसे ही किसी राज्यादेश की आशा बटोरे रहे, पर व्यर्थ हुई हर आशा···। जिस क्षण स्वयंवर सभा में उपस्थित हुए, उस क्षण हर चेहरे पर दृष्टि घुमायी·· अजब-सी व्याकुलता और आशा भरी थी आखों मे·· किन्तु पल भर में ही आंखें थक आयीं। उग्रसेन नहीं थे!

मन मसोसकर रह गए थे वह···। एक वही क्यों, उनकी तरह बहुत से अन्धक, वृष्णि और यादव कुलश्रेष्ठ होंगे जो इसी तरह मन को कुचले हुए चुपचाप इस सभा में उपस्थित हैं···दीखने मे आनन्द और उल्लास से भरी स्वयंवर सभा बहुरंगी लग रही है, पर भीतर से ही कालिख का एक गहरा

दाग लगा है उसमें···। इस कालिख में आनन्द-उल्लास का मुखौटा लगाये हुए नए मथुराधिपति कंस का दुष्ट चेहरा···। इस चेहरे ने अपने आतंक और भय के विस्तार से दाग को दबोच भले ही रखा हो, किन्तु भीतर ही भीतर यह दाग किसी दिन सुलगन बनकर मथुरा नगर की सम्पूर्ण सुख-शान्ति को दबोच लेनेवाला है !

रेशमी, झिलमिलाते वस्त्रों मे सजी-धजी राजपरिवार की महिलाओं का एक झुंड सभा-प्रकोष्ठ के एक हिस्से में बैठा हुआ है। उन्ही के बीच कही होगी देवकी···। अनजाने ही बहुत बार देखा देवकी का चेहरा वसुदेव के सामने उभर आया था···शान्त, सौम्य, शालीन मुसकान से नहाया जूही-सा चेहरा···। देवकी के समूचे व्यक्तित्व दर्शन में गहरी शान्ति का अनुभव होता है ···ऐसे जैसे सूर्य की अग्निधाराओं में अनायास ही कोई चन्द्रकिरण फूट निकले···। असम्भव, पर सम्भव !

जब-जब देवकी को देखा है उन्होंने, तब-तब मन में यही कुछ भाव आया है। बहुत कुछ सुन-जान भी रखा है उन्हें लेकर। चेहरे से जिस तरह शीतल लगती हैं, स्वभाव और गुण भी वैसा ही शीतलता लिए हुए हैं। सहज भी है स्वाभाविक भी। स्वयं देवक और पत्नी बहुत शान्त स्वभाव के है—वसुदेव के खूब जाने-पहचाने। उस रक्तांश से जनमी कन्या में वे गुण आ जाना नितान्त स्वाभाविक है।

अजाने ही दृष्टि उस झुंड की ओर आ ठहरी थी···पल भर बाद ही राज घोषणा के साथ राजसुता देवकी वरमाला किसी को पहनायेंगी···। उसके बाद परम्परानुसार बनेगा एक उग्र वातावरण···। पल भर मे ही सुन्दर राजसुता को देखनेवाले क्षत्रिय राजा-राजस स्वभाव के लोग देवकी को पाने लालायित हो उठेंगे ! हो सकता है कि चुनौतियों का आदान-प्रदान भी हो ? यह भी सम्भव कि युद्धामन्त्रण तक पहुंची चुनौतिया देवकी की इच्छा के विरुद्ध किसी बलशाली राजा या राज-परिजन को करने बाध्य हो जाए···।

एक क्षण के लिए जाने क्यो शान्त स्वभाव वसुदेव को वह सब अच्छा नही लगा था। विचित्र-सी परम्परा है यह···। राजसुता जिसे चाहे वर ले, पर उसी राजसुता को शक्तिसम्पन्न राजा उसकी इच्छा के विपरीत धन

की भांति हरण कर सकता है···। यह कौन-सा मानवीय न्यायपक्ष हुआ···? पर तर्कातर्क करने का न तो समय है, न ही यह वसुदेव का विचारक्षेत्र ! इसके निर्णायक हैं ब्राह्मण ! वे जो शास्त्र-रचना करते हैं। वे जो समाज नियमों को समाजश्रेष्ठों के हाथ सौंपते हैं !

स्त्री धन होती है इस नियमानुसार ! पुरुष की शक्ति-सामर्थ्य में सुरक्षित सचयकोष का एक हिस्सा···। इस हिस्से को पाने, छीनने, चुरा लेने का अधिकार पुरुष की सामर्थ्य और शक्ति पर···।

इस सामर्थ्य शक्ति की पौरुष लीला ने अनेक बार भयावह युद्धों को जन्म दे दिया है ! बहुतों के जीवन-मरण का निर्णय हुआ है उनमें···। किन्तु परम्परा है, जिस पर कभी पुनर्विचार नहीं हुआ ! न आवश्यकता ही समझी गई···।

यही कुछ सोच रहे थे कि महाराज कंस सिंहासन से उठे, घोषणा की —'इस शुभावसर पर आप सभी का सादर स्वागत करता हूं···। यह सूचना देते हुए मुझे हर्ष है कि कुछ समय बाद पूज्य देवक की पुत्री सुकन्या देवकी इस कक्ष मे उपस्थित हो रही हैं···। देवकी मेरी भगिनी है ! वह धर्मानुसार जिस पात्र को भी अपने योग्य समझेंगी—वरमाला पहनाकर वरण करेंगी !'

सभा में सहसा सन्नाटा बिखर गया। महाराज कंस अपनी घोषणा के बाद पुनः आसन पर बैठ गए ··कुछ ही पलों के भीतर रेशमी परदे झिलमिलाए। स्त्री-कक्ष की ओर से राजसुता देवकी ने सलज्ज चाल में धीमे कदमों सभा-प्रवेश किया···

सभी उन्हें देखने लगे। कुछ पहली बार देख रहे थे ! कुछ पहली बार देवकी की सुन्दरता परख रहे थे। किसी दृष्टि मे चकाचौंध बिखरी हुई थी, किसी में उत्तेजना···।

देवकी भी क्रमशः एक-एक चेहरा देख रही थीं। उन्होंने आसन पर एक ओर बैठे वृद्ध पिता को धीमे से सिर झुकाकर प्रणाम किया था, फिर धीमी चाल मे पंक्तिबद्ध आसनों पर बैठे हुए एक-एक राजपुरुष के पास पहुंचने लगती थीं···

जिसके पास पहुंचती—उस राजपुरुष के राज-कुल का वर्णन किया

जाने लगता । उस पुरुष के वीरत्व और पराक्रम की संक्षिप्त गाथा सुनाई जाती ।

देवकी के साथ-साथ चल रही थी सेविकाएं ! उन्हीं की तरह साज-शृंगार से सजी धजी । एक-एक कर देवकी राजपुरुषों के पास पहुंच रही थी. उनकी ओर से आगे बढ़ रही थी···जिस चेहरे के सामने से बढ़ जातीं —या तो वह निराशा में शीश झुका लेता, या फिर उत्तेजना और क्रोध उसके माथे से लेकर जबड़ों तक लकीरों की तरह खिंच जाते !

□

वह वसुदेव के पास आ रही थी···हर बढ़ते कदम के साथ वसुदेव और आसपास बैठे राजपुरुषों की हृदय-गति तीव्र होने लगती···। अनेक थे, जो अजाने ही अपने कुलस्वामी का स्मरण करने लगते···इतनी सुन्दर, सुशीला राजकुमारी यदि उनकी अंकशायिनी बने तो···

आगे सोच सकें—इसके पूर्व ही राजकुमारी का कदम आगे बढ़ जाता ! निराशा और अपमान का हल्का-सा थप्पड़ सिर को इस तरह झुका देता जैसे पौरुष लज्जा की किसी वजनी चट्टान के नीचे दब गया हो !

वह वसुदेव के सामने आ थमी थी । वसुदेव ने उन्हें आशापूर्वक देखा, फिर धीमे से दृष्टि झुका ली···।

ज्ञात नहीं, इस बीच देवकी ने क्या किया होगा, क्या भाव आये होंगे उनके चेहरे पर···बस, वसुदेव को इतना भर याद है सहसा उन्होंने अपने गले में मुलायम महकते फूलों की एक लड़ी झूलती पायी···।

देवकी ने वर लिया था उन्हें !

वसुदेव सिहर उठे थे । पास ही बैठे उनके पितृबन्धु शिनि ने गौरव के साथ कहा था, 'तुम धन्य हो देवी···। तुमने वृष्णिवंशियों को गौरव दिया !'

अगले शब्द उभर सकें इसके पूर्व ही वाद्ययंत्रों की ध्वनियां बजने लगी थीं ! राजघोषणा हुई···। 'मथुराधिपति महाराजकंस की भगिनि देवकसुता देवकी ने वृष्णिवंशी शूरसुत वसुदेव का पति रूप में वरण किया···।'

मंगलगानों की ध्वनियां उठीं···। पर अनायास थम गयी ! राजसभा में बैठे कुछेक राजा उत्तेजित भाव से उठ खड़े हुए थे—'नहीं···। यह नहीं

हो सकेगा ! हम जैसे कुलजों के होते हुए देवकन्या एक साधारण व्यक्ति को पति रूप में चुनें—हमें स्वीकार नहीं'''। हम सभी उन्हें युद्धामन्त्रित करके देवकी को अधिकारपूर्वक लेने का आमन्त्रण देते हैं !'

सभा में सन्नाटा बिखर गया'''। वसुदेव कुछ कहें, तभी उग्र स्वभाव शिनि उठ पड़े थे—'हमें स्वीकार है'''। जो देवकी को अपने पौरुषबल से जय कर सके, उसे मैं भी युद्धामन्त्रण देता हूं !'

कुम्हला गयी थी देवकी'''। कैसी अविश्वसनीय किन्तु आहत करने वाली परम्परा है यह ! स्त्री के समूचे निजत्व को अपमानित करने वाली '''। इच्छा हुई थी, कह दें—'अपने पौरुष और युद्धकला पर गर्व करनेवाले महापुरुषो'''! तुम मनुष्य हो या केवल प्रस्तर'''? भावनाशून्य'''। क्या प्रेम और समर्पण का अधिकार किसी जड़ आभूषण की तरह प्राप्त किया जा सकता है ?'

पर नहीं। होठों में ही शब्द भिच गए। ऐसा नहीं किया जा सकेगा ! यह देवकी ही नहीं, किसी भी राजसुता के लिए असम्भव है'''। परम्परा और नियम से विद्रोह का अर्थ है तर्कातर्क के नये युद्ध को आमन्त्रित करना '''। शिलावत खड़ी अपने ही दायें-बायें खिंची तलवारें देखती रही।

वसुदेव भी उठ चुके थे'''। वरमाला गले में थी, किन्तु न्यायप्राप्ति के लिए सुलगती आंखें !

'तब ठीक है !' एक स्वर उठा—'आओ वृष्णिवीर'''! हम परस्पर युद्ध करके देवकी किसकी है—यह निर्णय कर लें !'[1]

---

१. महाभारत के द्रोणपर्व में अध्याय ११४ के अन्तर्गत कहा है कि राजा देवक की कन्या देवकी के स्वयंवर में वृष्णिवंशी शिनि ने सब राजाओं को जीतकर देवकी को वसुदेव के लिए जय किया। शिनि, वसुदेव के चाचा थे। एक अन्य कथा के अनुसार यादव गणसंघ में देवकी का राजनीतिक प्रभाव और शक्ति देखते हुए उनके भतीजे कंस ने योजनाबद्ध रूप से यादव गणसंघ की ही दूसरी शक्ति शूरसेन के पुत्र वसुदेव से देवकी का विवाह रचाने में सहायता की। संभवतः शिनि को, वसुदेव के लिए देवकी प्राप्त करने में कंस ने सहायता की थी'''ताकि वृष्णिवंशियों ने उसे यादव गणसंघ में समर्थन मिले।

शिनि आगे बढ़े—साथ बढ़ आये थे वसुदेव, किन्तु शिनी ने उन्हें हाथ से परे कर दिया था। सेविकायें, देवकी को सभा के एक ओर कोने में खींच ले गयीं···। तलवारें खिचने को ही थीं कि मेघगर्जन करते हुए कंस उठ पड़े—नहीं···। यह सब नहीं होगा···! मेरी बहिन ने न्यायपूर्वक धर्म से योग्य वर का चुनाव किया है···। यदि किसी राजा को आपत्ति है तो वह पूज्य शिनि से युद्धपूर्व मेरे प्रहार सहने के लिए तैयार हो जाये···।'

शब्द कौंधे, फिर विद्युत के असंख्य कौंधों जैसे सभागृह में जहां-तहां बिखर गए···। मथुराधिपति कंस को युद्धामन्त्रण देना ऐसे ही था जैसे बाघगृह में पहुंचकर कोई बाघ को चुनौती दे !'

राजा थमे रह गए थे···। कुछ पल सन्नाटा फैला रहा, फिर जिन-जिन राजाओं या राज-परिजनों ने तलवारें खींच रखी थीं, अपने-अपने खोलों में समो लीं। अनेक ने गहरे श्वास लिए। लगता था कि भूकम्प आते-आते थम गया है···। नाश का भयावह वेग लिए आई आंधी अनायास ही शीतल जल की वर्षा ने गतिहीन कर डाली है।

कंस उत्तेजनापूर्वक उठे थे, अब भी खड़े थे। बोले—'देवकी···! तुम अपने चयन के लिए स्वतन्त्र हो···।'

देवकी सहज हुई। उसी तरह सलज्ज चाल में आगे बढ़ती हुई, वसुदेव के पास जा खड़ी हुई। एक बार पुनः मंगलगानों की धुनें उठीं, वाद्ययन्त्र का गुंजन बिखर गया···। और थोड़ी ही देर में सम्पूर्ण नगर, घर-द्वारों पर समाचार था—'महामन्त्री वसुदेव को मथुराधिपति की भगिनि ने पति रूप में वरण किया···।'

तुरन्त प्रतिक्रिया में मथुरावासियों ने प्रसन्नता ही व्यक्त की थी। यह समझ पाना कठिन कि इस सम्बन्ध से उन्होंने भविष्य में गणसंघ के किस रूप, व्यक्तित्व का संयोजन किया होगा ?



वसुदेव मथुराधिपति के बहनोई हो गए···! अन्धक, वृष्णि और यादवों के बीच यह जितनी प्रसन्नता का समाचार था, उससे कहीं अधिक राजनीतिक प्रतिक्रिया हुई थी इसकी। केशी और प्रद्युम्न सर्वाधिक चिन्तित हुए ! दबे-मुंदे शब्दों में एकांत अवसर पाकर महाराज कंस से निवेदन भी

किया था, 'महामन्त्री से राजसुता का विवाह कितना और कैसा प्रभावी होगा, महाराज—आपने पूर्णतः विचार कर लिया है ना ?'

कंस प्रसन्न थे। उपेक्षा से कहा था उन्होंने, 'मुझे आश्चर्य है प्रद्युम्न, इतनी छोटी-सी बात भी तुम समझ नहीं पा रहे हो···? वृष्णिवंशी गणसंघ की प्रमुख और प्रभावशाली शक्ति हैं। इस तरह हमने उन्हें अपनत्व की उन सीमाओं में जकड़ लिया है, जिसमें वह चाहकर भी मुक्त नहीं हो सकेंगे ···। अब वे हमारे हैं, हम उनके ! मथुरा के लिए यह सम्बन्ध अत्यन्त शुभकर हुआ है !'

प्रद्युम्न चुप हो रहे। केशी स्वभाव से लाचार उग्र होकर कुछ बोल पड़ना चाहते थे, किन्तु प्रद्युम्न की सधी दृष्टि के संकेत ने सहसा चुप कर दिया उन्हें।

कंस ने कहा था—'देखता हूं कि सभी अवरोध धीमे-धीमे शांत होते जा रहे हैं···यह शान्ति हमारे लिए शक्ति-संयोजना का अवसर देगी।'

जी हुआ था, प्रद्युम्न का कि कह दें—राजन्···! आप ही हैं जो लावे पर खड़े होकर मल्हार सुना सकते हैं···। पर कहा नहीं। क्रोधी राजा के सम्मुख इस तरह के शब्दों का पूरा उच्चारण भी कठिन हो जाता। जानते थे कि बात के आधे में ही मदोन्मत्त कंस का वज्रखंग उठेगा और तनिक भी सोच-विचार किए बिना मन्त्री का शीश धरती पर आ रहेगा···। रक्त-रंजित !

केशी ने भी सुना—हथेलियां मसलते रह गए। दोनों साथ-साथ विदा हुए थे महाराज के कक्ष से। बौखलाये, सुलगते हुए अपने ही भीतर बोलते-बड़बड़ाते चले आए। परस्पर विदा होते हुए प्रद्युम्न ने पुनः याद दिला दिया था—'स्मरण रहे सेनाधिपति···! अब यदि कोई स्थिति राजा कंस और हम सभी को बचा सकती है तो वह मात्र तुम्हारा प्रमाण हो सकता है—जैसे तुम एकत्र कर रहे हो !'

'जानता हूं, मंत्रिवर···!' केशी ने जवाब दिया, फिर तीव्रगति से अपने निवास की ओर बढ़ गये।

जहां-तहां भेजे गये अपने विश्वस्त गुप्तचरों को लेकर सूचनाएं जुटाने लगे थे। विवाह की शेष विधियां पूरी हो सकें, इसके पूर्व ही

विरुद्ध सभी प्रमाण एकत्र हो जाना आवश्यक हो चुका था।



देवकी से विवाह ने वसुदेव की राजनीति को सहसा ही नये उलटफेर से भर दिया! जानते थे, सुन्दर, सुशील पत्नी को पाकर वैयक्तिक रूप से जितने सम्पन्न हुए हैं, सामाजिक और राजनीतिक रूप से उतने ही निर्धन हो गये हैं···। कंस की बहिन से विवाह का गणसंघ के विभिन्न प्रमुखों पर क्या प्रभाव होगा—कहा नहीं जा सकता था! एक सम्भावना तो यह थी कि वह इसे वसुदेव की राजनीति का चक्र मानकर ही विश्वास कर लें··· किन्तु दूसरी ओर सर्वाधिक स्वाभाविक प्रतिक्रिया यह हो सकती थी कि, उन्हें वसुदेव द्वारा पिछले समय की गयी गणसंघ यात्रा वाली बातें खोखली जान पड़ें ··। सिर्फ महाराज उग्रसेन के प्रति वफ़ादारी की बेबुनियाद कहानी···!

क्या प्रतिक्रिया हुई होगी? कितनों ने सहज बुद्धि से इस दुष्कर राजनीतिक उलटफेर पर सोचा होगा और कितनों ने गहराई से—निश्चय कर पाना कठिन था···। जिस क्षण देवकी ने उन्हें वरमाला पहनाई थी, आनंदित हुए थे···पर जिस समय उसके परिणामों पर सोचने बैठे, अशांत हो गये!

विवाहोत्सव की तैयारियां जोर-शोर से प्रारम्भ हुईं···। कंस ने जैसे यह विवाह राज्योत्सव बना दिया था! अकुलाये, सिटपिटाये हुए वसुदेव मूक दर्शक की भांति सब कुछ देखे जा रहे थे। लगा था कि कंस कोरे क्रोधी राजा भर नहीं हैं—इतने विलक्षण और कुटिल राजनीतिज्ञ हैं कि उनमें पार पाना वसुदेव जैसे पुराने मन्त्री के लिए भी कठिन हो गया है! अब तक जितना चक्र उलटफेर के लिए वसुदेव ने चलाया था, वह एक ही झटके में कंस ने उन्हीं पर ला गिराया!

यही चिन्ता व्यग्र किये हुए थी कि नई सूचना मिली···। वसुहोम ही लाया था सूचना। कहा था—'महामन्त्री की जह हो···। एक समाचार, सारी नगरी में फैला हुआ है कि इस बार जब मथुराधिपति कंस अपनी बहिन देवकी को मातृगृह से विदा देंगे, उस समय वर-वधू का रथ सारथी,

की जगह वह स्वयं चलायेगा···।'¹

चीख पड़ना चाहते थे वसुदेव—'क्या? 'पर आवाज गले से नहीं निकली! इसके विपरीत भीतर-ही-भीतर कंस के लिए क्रोध से भरी एक गाली उभर आयी—कुटिल कंस···। वसुदेव के समूचे व्यक्तित्व को भूसे की तरह बिखेर देने का बहुत शालीन कूटजाल रचा था उसने! विनम्रता और नेह का ऐसा नाटक, जिसका कोई एक दृश्य झेलना तो दूर किनार, उस दृश्य के अंशमात्र को झेल पाना भी वसुदेव के लिए कठिन हो गया था!

वसुहोम किसी प्रतिक्रिया या नये आदेश की प्रतीक्षा में कुछ पल थमा-थका हुआ-सा उन्हें देखता रहा, फिर मुड़ने को हुआ···वसुदेव ने रोक दिया था उसे—'सुनो, वसुहोम···!'

'आज्ञा महामंत्री?' वसुहोम ने हाथ बांध लिये।

'तुम्हें स्मरण होगा वसुहोम, हमने तुमसे महाराज कंस और उनके अनुयायियों का विश्वास प्राप्त करने के लिए कहा था?' वसुदेव ने पूछा।

'प्रयत्न कर रहा हूं, देव···।' वसुहोम ने विनम्र स्वर में उत्तर दिया, फिर एक गहरा श्वास खींचकर बोला—'पर अब तक बहुत सफल नहीं हो सका हूं, श्रीमन्···!'

'कारण?'

'वे सब अच्छी तरह जानते हैं कि मैं आपका अत्यन्त विश्वसनीय सेवक हूं।'

वसुदेव चुप हो रहे। कुछ क्षणों एक रहस्यमय शान्ति बिखरी रही, फिर वसुदेव बोले थे—'सन्ध्या-समय मिलना!'

'पर देव···सन्ध्या तो आपका विवाहोत्सव है!'

'मैं उसी समय की बात कर रहा हूं···' वसुदेव ने कहा था—मुंह मोड़ लिया, जिसका अर्थ था कि वसुहोम अब जाये।

वसुहोम ने सिर झुकाया—चल पड़ा। वसुदेव कुछ देर सोचते रहे,

---

१. एक अन्य कथा के अनुसार वसुदेव मथुरा राजवंश के प्रमुख मंत्रियों में थे। कहा जाता है कि कंस ने वसुदेव को अपने समर्थन में लाने के लिए देवकी और वसुदेव के विवाहोत्सव में स्वयं सारथी बनकर रथ हांकने की आत्मीयता जतलायी।

फिर एक निर्णय ने सहसा उन्हें निश्चिन्त कर दिया। जानते थे कि इस तरह वह वसुहोम को केवल कंस के साथियों का ही नही, कंस का भी विश्वसनीय बना देंगे···। थोड़ी देर बाद वे अपने कक्ष की खिड़की के पास जा खड़े हुए। थमी दृष्टि से भावहीन चेहरा लिए उस सजावट को देखते रहे जो उनके और देवकी के विवाहोत्सव की तैयारी में की जा रही थी···



बहुत व्यस्तता में बीते थे वे दिन···कंस, ही नही समूचे मथुरा गणसंघ को ही जैसे व्यस्त कर दिया था। महाराजाधिराज की बहिन का विवाह, महामन्त्री के साथ हो रहा था। सहज ही थी यह व्यस्तता।

उल्लास का समुद्र बिखर गया था सभी ओर। पर इस समुद्र के भीतर, बहुत नीचे, एक ज्वालामुखी धधक रहा था। इस ज्वालामुखी को कोई कितना जानता था, कितना नही—पर वसुदेव बखूबी जान रहे थे। सामान्य जनों में उनके प्रति या तो दुविधाग्रस्त स्थिति बन चुकी थी, या फिर वे पूर्णतः शंका और अविश्वास के पात्र बन गए थे। जिन महाराज उग्रसेन के विश्वसनीय ही नही, अति विश्वसनीय व्यक्तियों में उनकी गणना होती थी, उन्ही महाराज के प्रति उनकी निष्ठा अब पूरी तरह संदिग्ध हो गई थी। कंस ने देवकी के स्वयंवर में किस तरह वसुदेव को बहिन दिलाने का प्रयत्न किया था, सब जानते थे। इस सारी स्थितियो मे भला यह कैसे न मान लिया जाता कि वसुदेव ने अपना विश्वास, निष्ठा और गणसंघ के शुभार्थ कभी ली शपथ केवल भुला ही नहीं दी है, बल्कि एक तरह बिक्री कर डाली है···।

वसुदेव मन-ही-मन झुलसते। बहुतेक उठी दृष्टिया जैसे चीख-चीख कर कहतीं—'तुम राजद्रोही हो, महामन्त्री···! तुमने राजा के प्रति ही नही, समूचे गणसंघ के प्रति दोष किया है···।'

वसुदेव सिर झुका लेते। इसके अतिरिक्त अन्य कोई राह न थी। कितनी बार मन होता था कि स्पष्टीकरण दे डालें। चीख-चीख कर कह दें —'कुछ पल धैर्य रखो, मित्रो···! शीघ्र ही यादव गणसंघ मुक्त हो जाएगा ···। यह सब जो तुम देख रहे हो—सत्य नही है···। सत्य है यह कि मुक्ति-मार्ग केवल यही रहा है···!'

पर शब्द गले में चिपके रह जाते। नीति, समयसूचकता, विचार सभी जैसे उन्हें भीतर-ही-भीतर चिपका लेते। कोई भीतर से वसुदेव को मुट्ठियों में भींचकर चीख पड़ता—'नहीं-नहीं'''तुम ऐसा नहीं कर सकते, महा-मन्त्री'''। ऐसा कभी नहीं कर सकते !'

वसुदेव वाध्य। ऐसे जैसे किसी अपने ही बुने धागे से बंध गये हों'''। दायित्व-धर्म का ऐसा धागा, जिसे तोड़ने में समर्थ होते हुए भी असमर्थ वसुदेव'''। विधाता भी मनुष्य को किन-किन कसौटियों पर कसता है'''? बिलकुल उस तरह जैसे किसी स्वर्ण को तपाया जा रहा हो'''। खूब गहरी आँच और फिर निरन्तर बढ़ता तापमान'''। इसे सहकर ही कुन्दन चमक सकेगा ! पहचान हो पायेगी उसकी। मूल्यांकन होगा !

बहुत कष्टकर यह तपन की स्थिति। पर यही तपन वसुदेव या उन जैसे व्यक्तियों का सत्य'''।

वसुदेव यांत्रिक भाव से सब कुछ करते गये थे'''भावनाओं को कब कर्तव्य की शिला के नीचे दबा ही नहीं डाला था—बल्कि लहूलुहान कर दिया—स्वयं को ज्ञात नहीं। केवल इतना जानते हैं कि इसी तरह दबते, गलते रहना वसुदेव की नियति !

समय बीतता गया था'''और उसके साथ-साथ घटनाएं भी गति लेती गयी थीं ! वसुदेव के विवाह समारोह का आयोजन करने में कंस जितना उत्साह दिखा रहे थे, उससे पल-पल वसुदेव की मन-स्थिति बिगड़ती जा रही थी !

□

और हर बीतते दिन, हर बीतते पहर और हर पल के साथ मानसी की भी स्थिति बिगड़ती हुई। राजनीति-चक्र किन-किन चेहरों और रूपों में घूम रहा था, मानसी समझती थी, इसके बावजूद वह उन अनेक गुत्थियों से अपरिचित थी—जो उनके संस्कार में ही नहीं थी ! जो संस्कार में था वह केवल सामान्य जन हो। इस सामान्य जन को राजनीतिक उलटफेरों और उन उलटफेरों में से अपनी राह खोज निकालना विचार विषय नहीं था। मानसी पल की किसी करवट कंस को लेकर विचार करती, और किसी करवट स्मरण हो आता कि बकुल मगध से लौट रहा होगा'''।

कर क्या निर्णय लायेगा—कह पाना असम्भव !

मन किसी बार थककर घायल पेड़ की तरह रिसने लगा और किसी बार ऊबता हुआ ठूठ जैसी निर्जीवता अनुभव करता। कितना प्रयत्न करती थी कि ऐसा न हो···? कितनी बार चाहा था कि स्मरण रखे—वह साधारण नारी है ! नीतिचक्र का केवल एक फेरा ! चक्र नहीं···।

यह संसार था चक्रों का ! उनका जो राजनीति के ऊबड़-खाबड़ों में निरन्तर घूमते थे। यह घूमना उनका स्वभाव ! यही उनका संस्कार ! यही उनका आदि और यही उनका अन्त ! पर मानसी अपनी स्थिति भूलकर केवल नारी हो गई···। एक कामना ! सहज, स्वाभाविक इच्छा !

और इच्छा का स्वभाव है कि किसी पल उमंग बनकर पंछी की तरह आकाश के अनन्त में कुलांचें भरती है, किसी पल अपनी ही कुलांचों से थककर धरती पर पड़ी छटपटाती है ! इस सहज इच्छा में न राज होता है, न संगमरमरी महल-अट्टालिकायें···। इसका संसार न धरती, न आकाश ! यह स्वयं में एक संसार होती है ! इस ससार में ही वह जनम लेती है, इसी में मृत हो जाती है !

तब क्या मानसी भी इन इच्छाओं और कामनाओं के ससार में मृत हो जाएगी···? मन करवटों से तनिक-सी मुक्ति पाकर ही पूछने लगता। और मानसी होती उत्तरहीन ! भला इच्छा का भी कोई उत्तर होता है···? जो होता है, वह कब का मर चुका। या कि जिसे सांसारिक बुद्धि कहा जाता है, वह कब की बिसर चुकी !

कहां जानती थी कि जिस जाल को मथुराधिपति कंस के गिर्द बुनने का कर्त्तव्य निबाहने जा रही है—वह उसके अपने आत्म को घेर लेगा ! इस तरह जकड़कर कि उससे मुक्ति नही पा सकेगी···।

मुक्ति···? मानसी थकी-हारी, व्यग्र भाव से अपने शयन-कक्ष में लेटी टकटकी बांधे हुए विशाल कक्ष की छत निहारती रहती···लगता कि दृष्टि की राह मनछत के हर कोने-कांतर में घूम रहा है···हर खोज का लक्ष्य एक ! हर खोज का एक प्रारम्भ और एक ही अन्त ! कंस···! मथुराधिपति कंस···!

मथुराधिपति न भी हो—तब भी केवल कंस···। इस कंस को ही

मानसी चाहती है ! यह कंस अब उसके लिए व्यक्ति नहीं, एक कामना बन गए हैं ! और कामना ही न जी पाना सम्भव है क्या···?

काश ! कंस जान सकते मानसी को भी इसी तरह···। मानसी उनके लिए शरीर नहीं—कामना बन जाती ! तृप्ति···।

पर मानसी देख रही थी कि कंस केवल मथुराधिपति को जानते हैं···। सम्भवत: अपने को जानने का न अवसर है उनके पास, न उनकी आवश्यकता···।



आशी आयी थी एक बार··! सदा की तरह समाचारों का हर समय-सन्दर्भ सुनाने के लिए। यह उसका नियत क्रम था। दिन में ही दो-तीन बार आती और बतला जाया करती थी कि क्या कुछ घट रहा है इस भावना के बाहर···। कंस कहां हैं और किस कार्य में व्यस्त हैं···!

मानसी सुनती। उसी तरह तटस्थ रहकर सुनने की चेष्टा करती, जिस तरह पहले कभी सुना करती थी। तब, जब वह मथुरा मे आयी-आयी ही थी···उसे इन समाचारों में रुचि होती थी···। इन समाचारों की सीढ़ियां चढ़कर वह मथुरा और मगध की राजनीति के बीच झांका करती थी। बिलकुल उस यांत्रिक दास भाव से जिस भाव से सेवक मन-शरीर भूलकर केवल सेवक होते हैं ··। व्यक्ति हो या राज्य, व्यवसाय हों या अपना जीवन।

लगता था कि यही दास भाव सच है। यही भाव है जो जीवन में सुख, आनन्द, तृप्ति और सम्पूर्णता देता है···किन्तु अनायास ही उसे लगा था कि न यह सुख है, न आनन्द, और न ही तृप्ति···। यह है किसी का दासत्व ! इसमे मानसी का अपना क्या है ?

दासों में उनका अपना क्या होता है···?

जिज्ञासा बनकर यह प्रश्न मन में कब किस क्षण कौंधा—मानसी को याद नहीं। बस, इतना याद है कि इस प्रश्न के उत्तर में उसने जिस काल-सत्य को पाया था···या कि केवल सत्य को पाया था—वह था उसका स्वतन्त्र अस्तित्व ! यह अस्तित्व किस तरह होता है या कि कब और कैसे पहचाना जाता है—यह भी नहीं जानती थी मानसी। केवल इतना ही रहस्य जान सकी थी कि जो कुछ वह करती रही है—वह उसका सुख,

आनन्द, तृप्ति या सम्पूर्णता नहीं है···।

तब क्या है स्वप्न, आनन्द, सत्य और सम्पूर्णता···?

मानसी को मालूम नहीं।

किन्तु क्या किसी को इतना मालूम होना काफी नहीं कि जो है, वह उसका अपना कुछ नहीं है ? और उसका अपना क्या है ? यही खोजने लगी थी मानसी···चाहा नहीं था, पर जाने कैसे यह खोजी जनम आया था उसके भीतर ! इस खोजी ने हर पल, हर क्षण के साथ अपने, दूसरों के और फिर जड़ के भीतर तक खोज करना प्रारम्भ कर दिया था···और इस खोज ने ही उसे निष्कर्ष दिया था···

यह निष्कर्ष कंस के प्रति कामना है ? या कामना पूर्ण कर पाने की केवल इच्छा ? मानसी को यह भी मालूम नहीं। पर कुछ है जरूर···।

एक अजाना निष्कर्ष···! यही निष्कर्ष सत्य है···।



कभी-कभी राहत के पल पाकर कंस आ जाया करते थे···कुछ प्रहर बिताते और फिर दास-भाव से अपने संसार में लिप्त हो जाते···। मानसी किसी पल खुली पलकों और किसी पल बन्द पलको उनकी विशाल भुजाओं की कैद में पड़ी अपने सत्य, अपने अस्तित्व को खोजती। एक बार तो यह सत्य होंठों पर आ ही गया होता···कंस उस दिन बहुत शीघ्र आ पहुंचे थे मानसी के निवास में। देर तक बहुतेक बातें होती रही थीं···वे, जिनसे न मथुरा की नीति का सम्बन्ध था, न मगध अथवा भरत खंड के किसी राज-चक्र का···। वे बातें अच्छी लगती थीं। जब-जब उनके बीच होतीं, लगता था कि मानसी के मन पर ओस झरने लगी है···। यह ओस उसके शरीर-मन को उस हरे पत्ते की तरह हिलाये रखा करती थी···जिस पर कई-कई चांद जनम आये हों···ठंडी, मुलायम चमक बिखेरते हुए···।

ऐसा ही पल था वह। कंस अनायास पलकें मूंदकर शैय्या पर लेटे हुए थे और मानसी शृंगार कर रही थी···होंठों ने एकदम ही बुदबुदाकर प्रश्न कर दिया था—'राजन् !'

'हूं।' पलकें नहीं खोली थीं उन्होंने। मानसी ने शृंगार करते हुए सामने के शीशे में उनकी वह शान्त मुद्रा देखी थी, फिर कहा था—'कभी-

कभी लगता है देव, मैं बहुत···बहुत-सी बातें करना चाहती हूं आपसे !'

'करो···।' कंस ने कहा—पलकें खोल दीं।

मानसी इन खुली पलकों को शीशे में देखते ही जैसे सकुच गयी···कंस पूछ रहे थे—'कहो, देवी···? क्या कहना चाहती हो ?'

और मानसी के होठ बन्द। केवल श्वांस के साथ-साथ मन खलबली कर उठा। एक संकोच जनम आया मन में। इस संकोच ने ही कहा था उससे—'क्या बक रही है···? कंस के प्रति प्रेम-समर्पण तो बोले-अबोले कई बार व्यक्त किया है तूने किन्तु···किन्तु सदा-सर्वदा उनके साथ, उनके समीप होने की इच्छा का अर्थ जानती है क्या होगा···?'

मानसी ने चाहा था, कहे—'जानती हूं···' पर लगा कि अपने ही भीतर गुनगुनाई भर है—शब्दयुक्त होकर भी शब्दहीन !

संकोच पुनः कह गया था···चेतावनी की तरह गूंजाते शब्दों में—'ऐसी भूल कभी न करना मानसी···! कंस जितना जो कुछ दे रहे हैं, उससे अधिक कभी नहीं देंगे···इसलिए कि दे नहीं सकते···। वे केवल कंस नहीं हैं—तेरी तरह—वे हैं, मथुराधिपति ! महाराज कंस !

और मानसी ने सहसा अनुभव किया था जैसे पल भर पूर्व जिस ओस से नहाया मन हरे पत्ते की तरह थरथरा रहा था—अचानक सूख गया है ! केवल एक खड़खड़ाहट देता हुआ, आंधी में वृक्ष से गिरे पत्ते जैसा···!

छार-छार हो उठी थी वह ! कंस उस समय भी पूछ रहे थे—'··तुम कुछ कहना चाहती हो ना, कहो···।'

और मानसी ने जिस झटके से बाल कन्धे के पीछे उछाले थे, उसी झटके से विचार मन से उछाल दिया था—'कुछ नहीं···। एक कविता मन में जनम आयी थी···अब बोल ही खो गए···। क्या कहूं ?'

हंस पड़े थे कंस। मानसी भी हंसी। या सिर्फ हंसने का प्रयत्न किया था उसने···।

□

और एक वही दिन क्यों, अनेक दिनों, अनेक बार, इसी तरह, ऐसे ही क्षणों में कविता के बोल मन में जनमे हैं···पर तुरन्त ही उसके अपने भीतर खो गए हैं···घंटों, पहरों और पलों के खर्च से उन्हें सहेजती-बटोरती है

मानसी—और वे फिर बिखर जाते हैं।

यह मानसी का नित्य कर्म ! नित्य जीवन···।

इसी तरह चलता रहा है···इसमें भी सन्तुष्ट है···पर कितने दिनों चल पायेगा ? किसी-न-किसी दिन बकुल आ पहुंचेगा। उसके साथ आयेगा —मगधराज जरासन्ध का राज-निर्णय ! आदेश का एक अंकुश लगेगा मानसी को नंगी आत्मा पर और वह थकियाती हुई उस दिशा में चल पड़ेगी, जिधर वह अंकुश ले जाना चाहेगा···।

मानसी ने पलकें मूंद ली। इस तरह कड़वी, मन को झुलसा डालने वाली दवा पी हो। शय्या पर लेटी रही···

'देवी···?'

मानसी चौंकी थी। पलकें खोलीं, करवट बदलकर उसकी ओर देखा। आशी सिर झुकाए हुई थी। मानसी पहचान नहीं सकी—उसके चेहरे पर क्या है ?

'देवी···!' आशी ने पुनः कहा, इस तरह जैसे किसी कोड़े का प्रहार खाकर कसकी हो।

'बोल, आशी···? क्या बात है ?' मानसी बैठ गई।

'बकुल आया है गिरिव्रज से···।' आशी ने कहा था। मानसी की पलकें फैल गयी। मन किसी आहत पंछी की तरह फड़फड़ाने लगा···। आशी का स्वर बतला रहा था कि वह कोई अच्छा समाचार नहीं लाया होगा···।

मानसी की ओर से चुप्पी पाकर आशी ने कहा था—'वह इसी क्षण आपसे भेंट करना चाहता है देवी···।'

मानसी फिर भी चुप रही। दृष्टि आशी की ओर नहीं थी। दृष्टि थी दीवार की ओर। पर विचित्र बात थी ! अच्छी-भली दृष्टि होते हुए भी कुछ नहीं दीख रहा था।

आशी ने कहा था—'उसे यहीं बुला लाऊं या आप स्वयं उनसे भेंट करने चलेंगी ?'

मानसी ने इस बार दृष्टि घुमायी—आशी को देखा।

आशी ने भी। लगा था कि मरुथल को देख रही है···और मानसी ? वह तो मरुथल पर चल रही होगी···। झुलसते पांव, सूखता गला, धुंधमाती

दृष्टि···!



सांझ ढल चुकी थी उस समय···रात्रि के प्रहर का प्रारम्भ होने को था। मथुरा नगर देवकी-वसुदेव के विवाहोत्सव में सजा-संवरा चकाचौंध फैलाता हुआ। रह-रह कर विभिन्न वाद्ययन्त्रों के स्वर सुनाई पड़ने लगते ···? उल्लास और उमगों से भरे वाद्य-स्वर···।'

पर मानसी रोगिणी की तरह बढ़ रही थी भेंट-कक्ष की ओर। पीछे-पीछे आशी। दोनों ही जैसे-पल-पल अपार वेदना सहते हुए···

बकुल देखते ही उठ खड़ा हुआ था, 'अभिवादन लें देवी···।'

मानसी ने चाहा, उत्तर दे, किन्तु स्वर नहीं फूटे। केवल मरुभूमि-सी खाली संवेदनहीन आंखें उठीं—पलकें उन पर छिलती हुई गिरी-उठीं। बकुल बैठ गया।

बात आशी ने प्रारम्भ की। मानसी ने आसन ग्रहण किया तो एक ओर खड़ी हो रही थी वह। पूछा—'क्या समाचार है गुप्तचर···। मगध में सब ओर आनन्द तो है ना···? हमारे परिवारजन, राज्य की प्रजा और सम्राट—सब कुशल से तो हैं?'

'सब ठीक है।' बहुत संक्षिप्त-सा उत्तर दिया था बकुल ने। कहा—'मुझे तो गिरिव्रज जाने और वहां से आने की कठोर यात्रा में विश्राम का भी अवसर नहीं मिला, देवी···' सम्राट तक समाचार पहुंचाने के पश्चात् तुरन्त ही आदेश लेकर लौटना पड़ा।'

पूछना चाहा था मानसी ने, क्या है आदेश? पर आवश्यकता नहीं हुई। बकुल ने एक गहरा सांस लेकर कहा था—'देवकपुता और वसुदेव का समाचार उन्हें भी मिल चुका है। समय हुआ तो वह भी यहां आएंगे···पर उसके पूर्व वह चाहते हैं कि तुम मथुरा से सुरक्षित बाहर निकल जाओ···।'

जो हुआ था—चीख पड़े—'नहीं···!' पर क्या हो गया है उसे? जड़ हो गयी है एकदम। अपने ही भीतर जानने की इच्छा हुई थी उसे—उसमें जीवन शेष है या नहीं?

बकुल बोला था—'समय उपयुक्त है देवी···' जिस समय देवकी और वसुदेव के विवाहोत्सव में सब ओर उत्सव हो रहे होंगे, उसी समय हम ..

यहां से निकल चलेंगे'''।'

मानसी निलावत। आखों केवल दीख रखी है—स्पन्दनहीन।

बकुल कहे गया था—'अब से कुछ समय बाद ही आपको चलना है देवी'''। मगधराज का यही आदेश है! आप इसी क्षण तयारी प्रारम्भ कर दें!' बात समाप्त करते ही वह उठ खड़ा हुआ था। जाते-जाते कह दिया था उसने—मैं भवन के बाहर ही एक भव्य रथ लेकर आपकी प्रतीक्षा करूंगा'''।'

मानसी ने पुनः चीखकर उसे रोकना चाहा था, पर शब्द नहीं निकल सके। केवल आंसू झर उठे थे'''जैसे उसके अपने भीतर के सभी शब्द पिघलकर बर्फ की तरह ढलने लगे हों!

सन्ध्या।

विवाहोत्सव की सभी क्रियाएं पूर्ण हुई थी, फिर आयी विदा-वेला···। पर इस वेला के पूर्व ही एक ऐसी घटना हुई, जिसने वसुहोम को ही नहीं— कंस, केशी, प्रद्युम्न, मुष्टिक आदि को चमत्कृत कर दिया···!

सभी ठगे-से खड़े रह गए थे। प्रसन्नता और उल्लास के वातावरण को बड़े नाटकीय मोड़ ने गम्भीरता की एक शिला के नीचे दबोच डाला था···। शिला थी—वसुदेव का वसुहोम के प्रति अप्रत्याशित और अविश्वसनीय व्यवहार···।

वसुहोम को सभी के सामने एक जोरदार थप्पड़ जड़ दिया था महामंत्री ने, चीख पड़े थे—'नीच···। धूर्त···। तुझमे यह आत्मबल कहां से आया, जिसके कारण तू मुझे मुंह दिखा सका···?'

सभी स्तब्ध और हतप्रभ खड़े रह गये थे। क्या हुआ महामन्त्री वसुदेव को? इतना क्रोधी और कठोर तो उन्हें कभी देखा नहीं···?'

वसुहोम स्वयं चकित होकर देखता रह गया था, याद आए थे वे शब्द, जो पहली भेंट मे महामन्त्री ने कह दिये थे—'हमने तुमसे महाराज कंस और उनके अनुयायियों का सम्पूर्ण विश्वास प्राप्त करने के लिए कहा था—?'

और वसुहोम बोला था कि चाहकर भी वह वैसा कर नहीं सका है। तब क्या महामन्त्री ने उसे पूरी तरह कंस से जोड़ने और स्वयं से परे करने के लिए यह अकारण प्रहार किया है···? पर प्रहार तेज था। जितना बदन, तिलमिलाया था वसुहोम का, उससे कहीं अधिक आत्मा ... .

सार्वजनिक रूप से वसुहोम को अपमानित कर दिया था उन्होंने...। अपने सर्वाधिक विश्वसनीय सेवक को···?

कंस कुछ कह सकें या कोई कुछ पूछे-समझाये—इसके पूर्व ही महामन्त्री चीखे थे—'जा ! इसी क्षण दूर हो जा मेरे सामने से ··! तुझे देखकर मुझे गहरी घृणा होती है···। धिक्कार है तुझ पर···। सम्पूर्ण विश्वास और स्नेह का ऐसा तिरस्कार किया तूने···? ऐसा छल ?'

'किन्तु देव···?' आखें छलछला आयी थीं वसुहोम की। गर्दन झुका रखी थी।

कंस आगे बढ़ आये, 'रुकिये, महामन्त्री···। कारण जान सकता हूं कि इस मूर्ख से क्या अपराध हुआ है ?'

और कारण बतलाने लगे थे वसुदेव···एकदम झूठे आरोप मढ़ दिये थे वसुहोम पर। कहा था कि उसने वसुदेव के निस्कलुष चरित्र को लांछित किया है। उनकी मन्त्रि-गरिमा को धूल-धूसरित कर दिया है। किसी से कहा है कि वह देवकसुता से केवल इस कारण विवाह कर रहे हैं, क्योंकि मथुराधिपति के स्थान पर गणसंघ-प्रमुख बनने की उनकी योजना है···। यही सब कर रहा था वसुहोम···यही सब कहता घूमा था—वसुदेव के हर शब्द, हर आरोप को सिटपिटाया, हक्का-बक्का सुनता गया था वसुहोम···। फिर जैसे तीव्रबुद्धि ने बहुत कुछ समझा था उसने···। वसुदेव ने सार्वजनिक रूप से व्यक्त करके उसे सदा-सदा के लिए कंस के साथियों तक पहुंचने की राह बना दी है···इस पीड़ा पूर्ण राजनीति चक्र को भी शिरोधार्य किया था वसुहोम ने। सह गया।

कंस समझा-बुझाकर बहनोई को उनके रथ की ओर ले चले थे··· देवकी उनसे पूर्व रथ में पहुंचा दी गयी थी। बोले थे—'इस शुभावसर पर मन दूषित करना उचित नहीं है मन्त्रिवर···। इस आनन्दबेला को क्रोधावेश में नष्ट न करें···।'

वसुदेव उसी अभिनय-प्रवणता के साथ रथ में जा बैठे। कंस ने सारथी का स्थान सम्भाल लिया था। अगले ही क्षण रथ तीव्रगति से वसुदेव के निवास की ओर चल पड़ा···।

☐

वसुहोम उसी तरह सिर झुकाये खड़ा रहा···कुछ पलों बाद उसने पाया था कि सेनापति उसके समीप हैं···स्वर दबा हुआ। शब्द फुसफुसाहट के साथ सम्वाद रूप लेते हुए।

'वसुहोम···।'

वसुहोम ने जैसे-तैसे झुकी गरदन ऊपर उठायी। आंखो को उसी तरह छलछलाये रखा। पुतलियों पर उभरी पीड़ा जल की सतह पर तिरती अनुभव हुई।

केशी ने हौले से कन्धे को थपथपा दिया था, 'मुझे खेद है, नायक···। तुम्हें इस प्रकार सार्वजनिक रूप से अपमानित किया गया है···। वसुदेव अपनी राजनीतिक असफलता या असफलता के कारण ही इस तरह अनियंत्रित हो गये हैं···। किन्तु निश्चिन्त हो—उनका दंभ कुछ ही समय में चूर-चूर हो जायेगा।'

वसुहोम ने शब्द सुने···भीतर ही भीतर खलबली बिखर गयी—कैसे···? कैसे यह दंभ चूर होगा···? किस तरह··?

पर पूछना ठीक नहीं। इस क्षण किसी भी तरह की उत्सुकता जतलाकर वसुहोम अपने आपको उजागर कर देगा। ऐसा नहीं करना चाहिए उसे। उचित यही होगा कि केशी से मिलती सात्वना में, केशी को ही उगलकर बकने दे। यों भी केशी का उग्र स्वभाव जानता है वह।

केशी ने वसुहोम के पीड़ापूर्ण चुप को समझा। एक गहरा श्वांस लेकर कहा था, 'आओ मेरे साथ···।'

यान्त्रिक ढंग से वसुहोम चुपचाप केशी के साथ चल पड़ा।



नर-नारियों और उत्साहपूर्ण वातावरण को चीरते हुए वे दोनों केशी के एकांत निवास पर जा पहुंचे थे। बीच में न कोई बात की थी केशी ने, न ही वसुहोम ने कुछ पूछ-ताछ। अपने चुप को इस तरह प्रकट किया था, जैसे वह बिलकुल ही अनजान बन गया है···या कि असहज होकर स्तब्ध रह गया है—शब्दहीन होकर। अपमान और ग्लानि के भाव चेहरे पर उगाये रखे थे। यही भाव होंगे जो केशी से बहुत कुछ कहलवाएंगे। उसके उन शब्दों का अर्थ भी समझा सकेंगे, जिनके अनुसार केशी ने वसुदेव की

वध'''।

लगा था कि शब्द सब ओर गूँज गया है ! ऐसे जैसे बिजली कड़की हो ! उल्का गिराती हुई'''। पर यह शब्द सच ही वसुदेव के लिए कहा गया है—यह इस क्षण भी वसुदेव और देवकी के लिए अविश्वसनीय !

'रथ से नीचे आ जाओ, वसुदेव'''।' सहसा कंस के जबड़े कस गये थे'''।



पूछना चाहा था—क्यों महाराज'''? केवल पूछना ही नहीं चाहा था, चीख पड़ना चाहा था'''पर आवाज गुम हो चुकी थी !

और उससे भी अधिक गुम हो गयी देवकी ! अपने में होते हुए भी अपने से अलोप ! जितना नाटकीय लगा था सब, उससे कहीं अधिक अविश्वसनीय ! संवादों के पूरे तीन दौर हो जाने पर भी देवकी विश्वास नहीं कर पा रही थी कि उनके कठोर स्वभाव भाई जो कुछ बोले हैं—वह सच है ?

वसुहोम ने जो सूचना दी थी—वह सत्य निकली'''। वसुदेव की तीक्ष्ण-बुद्धि ने भाँप लिया था। कंस का व्यवहार न तो इस विचार के साथ अप्रत्याशित लगा था, न ही असहज। वह उतरने लगे थे रथ से'''देवकी ने कलाई थाम ली थी उनकी 'नहीं, देव'''। नहीं !'

देवकी को हौले से परे करने की चेष्टा की थी वसुदेव ने। स्वर में संयम रखा था, उससे कहीं अधिक सन्तुलन। बोले थे 'राजाज्ञा का सम्मान करना मेरा धर्म है, देवी'''। और मथुराधिपति का आदेश मेरे लिए गौरव का विषय है'''।'

देवकी विह्वल स्वर में बिलख उठी थी'''नहीं-नहीं, स्वामी'''। यह सब असह्य है'''।' अचानक वह भाई की ओर मुड़ी थी—पूज्य'''। यह निर्दोष हैं। फिर मेरे सौभाग्य भी हैं'''आपके परिजन हो चुके हैं'''इन पर दया कीजिए !' देवकी का हर शब्द रुलायी से कहीं अधिक उस थरथराहट से भरा हुआ था जो किसी बाणविद्ध हिरणी की आकुल तड़प से जनमती है।

'मैं भी यही विचार करता था बहन'''। किन्तु मुझे खेद है—वसुदेव ने राजद्रोह किया'''। अपना सम्पूर्ण विश्वास और स्नेह इस दुष्ट को सौंपते हुए भी इसने वह सब किया जो कोई शत्रु ही कर सकता है'''। इसका जीवन मेरे लिए घातक है'''। इसका रक्तपात भी मेरे लिए घातक ही

'समझोगे भी नहीं।' केशी ने कहा—'फिर अपने स्थान से उठकर कक्ष में घूमने लगा। बोला—'वसुदेव जो कुछ करने वाले हैं या करते रहे हैं, वह उन्होंने अपनी ओर से पूर्णतः गुप्त रखा था, किन्तु मेरे गुप्तचरों से कुछ भी नहीं छिप सका···। वह जिस षड्यन्त्र का आयोजन करते रहे, वह उनके अपने राजा बनने का नहीं था, बल्कि महाराज कंस को केवल पदच्युत करने भर का था···।'

वसुहोम के भीतर घबराहट बिखर गयी···केशी के मन्तव्य में बार-बार आया—'था शब्द स्पष्ट कर रहा था कि वसुदेव का राजनीति-चक्र या तो समाप्त हो चुका है या समाप्त होने को पहुंच उठा।'

केशी कह गये—वसुदेव महाराज उग्रसेन के प्रति सम्पूर्ण श्रद्धा से समर्पित रहे हैं···।' और यही श्रद्धा है जिसके कारण उन्होंने सारे जाल बुने-बुनाये···पर अब वे व्यर्थ हो चुके हैं। उन सभी का असली रंग-रूप महाराज कंस के सामने आ चुका है···।'

'मैं···मैं समझा नहीं, सेनापति?' स्वयं को बहुत सावधान भी बैठाये नहीं रख सका था वसुहोम···लड़खड़ाता हुआ-सा उठ खड़ा हुआ।

केशी ने हंसते हुए उत्तर दिया था—'हां, यही हुआ है···।' कुछ पल चुप रहकर उसने फिर कहा था—'निश्चिन्त मन हो वसुहोम···। महामन्त्री ने किस तरह तुम्हें सार्वजनिक अपमान दिया है, उसका दण्ड शीघ्र ही उन्हें मिलने वाला है।'

वसुहोम को लगा था कि केशी का हर शब्द अंगारे की तरह उसके भीतर उतरता जा रहा है···उसमें चिन्ता, व्याकुलता और उमंग कहीं अधिक बेबसी बिखराता हुआ। पूछा, 'मैं कुछ भी नहीं समझ पा रहा हूं सेनापति···। महामन्त्री ने जीवन-भर के समर्पण का जो पुरस्कार अपमान के रूप में मुझे दिया है, उसके बाद मेरी बुद्धि कुण्ठित हो गई है···। मैं अपने ही भीतर, अपने को ही मृतवत् अनुभव करने लगा हूं···। कुछ भी समझ-बूझ पाने की शक्ति और बुद्धि मुझमें शेष नहीं रही है।'

'तो समझो···।' केशी मुड़े—बोले, 'वसुदेव के हर षड्यन्त्र की विश्वस्त [illegible]राज तक पहुंच [illegible] हैं···गड़बड़ केवल यही हुई कि [illegible]

[illegible]राज्यारोहण की तैयारी प्रारम्भ

हो गयी थी···मेरे गुप्तचरों से मिली सूचनाओं में कुछ देर हो गयी···।'

'पर अब क्या हो सकता है····?' वसुहोम ने समझ लिया था—उसकी अपनी और स्वामी की चेष्टायें व्यर्थ हो चुकी हैं। कल्पनामहल धराशायी ···। फिर भी कुरेदन जारी रखी।

केशी बोला—'यही तो वह सूचना है जो तुम्हारे अपमानित मन को शांति देगी···। महामन्त्री वसुदेव के जीवन और भविष्य की लगाम इस समय मथुराधिपति के हाथ मे है···। अब वह सब होगा, जो बहुत पहले—सम्भवतः महाराज उग्रसेन को बन्दी बनाये जाने के समय ही हो जाना चाहिये था···।'

केशी के सम्वादो ने सहसा किसी चक्र की तरह वसुहोम के मन शरीर को टुकड़े-टुकड़े कर डाला था···। न कोई सोच शेष रहा था, न भावना, न आशा···केवल तड़प शेष रह गयी थी···। बेचैनी और पीडा से भरी छटपटाहट···।



जिस क्षण केशी के निवास से वसुहोम अपने निवास की ओर लौटा, उस क्षण तक विवाहोत्सव के उल्लास-समारोह चल रहे थे···वाद्यन्त्रों की ध्वनियां भी गूंज रही थी और पटाके भी।

किन्तु वसुहोम अपने ही भीतर-बाहर एक सन्नाटे और अन्धकार से भरा हुआ था···। शब्द रह-रहकर कानो में गूंज रहे थे—'·· महामन्त्री वसुदेव के जीवन और भविष्य की लगाम इस समय मथुराधिपति के हाथों में है···। अब वह सब होगा, जो बहुत पहले—सम्भवतः महाराज उग्रसेन को बन्दी बनाये जाने के समय ही हो जाना चाहिए था।'

क्या होगा ? वसुहोम के भीतर के घबराहट भरा प्रश्न उगा। मन-मस्तिष्क को दहलाता हुआ-सा।

क्या महामन्त्री वसुदेव का जीवन समाप्त हो जायेगा···? या वह बन्दी बना लिए जायेंगे···?

वसुहोम अपने भीतर के सवाल-जवाब से ही सहम गया। एक तीसरी आवाज उग आयी थी उसके अन्तस से—"हे ईश्वर···। रक्षा करना। इस ·म मे यह कैसी बलि ली जायेगी एक सन्त पुरुष की ?

उत्तर कहीं नहीं है'''। उत्तर मिलेगा। पर तब, जब केशी के अनुसार कंस द्वारा क्या कुछ के बीच वसुदेव-देवकी का नया जीवन या तो आरम्भ होगा या समाप्त हो जायेगा। इसी ऊहापोह में उखड़े लड़खड़ाते हुए अपने निवास पर आ पहुंचा था वह'''सहसा याद हो आया था'''मथुराधीश ने वसुदेव-देवकी के रथ का सारथी भार सम्हालने से पूर्व धीमी आवाज में आदेश दिया था वसुहोम को—'वसुहोम'''। तुम मेरे वापिस होने तक यहीं रुकोगे'''।'

वसुहोम विश्राम के लिए लेट रहा था'''अचानक बदन में विद्युत संचार हुआ था। वह उठा था और तीव्र गति से राजनिवास की ओर बढ़ गया'''। वहां उसे पहुंचना होगा'''पहुंचकर उपस्थित रहना होगा। मथुराधिपति का आदेश है'''।



कंस लौटे थे—निश्चिन्त'''। वसुहोम सहमा हुआ-सा उन्हें रथ से उतरकर राजनिवास की ओर बढ़ते हुए देखने लगा था। समझ गया था, वे प्रसन्न हैं। प्रसन्न ही नहीं, निश्चिन्तता की सीमा से बढ़कर आश्वस्त। ऐसे, जैसे बहुत बड़ा दायित्व पूरा कर आये हों ! हल्के हो गये हों।

वसुहोम के पास से निकलते हुए एक पल के लिए थमकर कहा था उन्होंने—'कुछ समय बाद मुझसे भेंटकक्ष में मिलो।'

'जो आज्ञा महाराज।' वसुहोम ने सिर झुकाया।

कंस चले गये।

वसुहोम जा पहुंचा था राजा के भेंट-कक्ष में। देर रात्रि तक चुपचाप बैठे रहना पड़ा था उसे। फिर वह आये'''।

वसुहोम का सारा बदन थकान और नींद के गहरे आलस से भरा हुआ था, किन्तु वह उठ खड़ा हुआ'''।

'वसुहोम'''।' महाराज बोले थे। आसन ग्रहण करते ही अगले शब्द कहे थे उन्होंने 'तुम्हें जो कुछ सुनने-जानने को मिला था और जो कुछ तुमने कहा था—वह उस तरह नहीं, किन्तु किसी अन्य तरह वसुदेव की दुष्टता और षड्यन्त्र का प्रमाण था'''।'

वसुहोम थूक के घूंट निगलता हुआ भयभीत कंस की ओर

रहा···चिन्ता और बेचैनी से सराबोर। मन में किसी सांप की तरह रेंग रही है आशंका···क्या हुआ वसुदेव और देवकी का···? क्या बीता उनके साथ···?

कंस की मुद्रा, शब्द, व्यवहार, निश्चिन्तता···सभी कुछ किसी अशुभ की ओर संकेत कर रही हैं···

कंस बोले थे—'वसुदेव ने तुम्हारे साथ जो दुर्व्यवहार किया, वह बहुत क्लेषकर था···। किन्तु अब तुम निश्चिन्त हो···। हमने उस दुष्ट को पर्याप्त दण्ड दे दिया है···। अब वह कभी किसी को इस तरह अपमानित-प्रताड़ित नहीं कर सकेगा।'

वसुहोम चुप। लगा जैसे बर्फ की शिला हो गया है। दण्ड···। इस शब्द ने इस शिला के भीतर रिसाव पैदा कर दिया···

सहसा कंस बुदबुदा उठे थे···। शब्दों का कसाव और जकड़न जतलाने लगे थे कि कंस किसी ज्वालामुखी के बहते लावे से भरे शब्द वातावरण में उलीचने लगे हैं···'वसुदेव! उस दुर्बुद्धि को कितना स्नेहादर दिया मैंने···? सम्बन्धों और रक्तसम्बन्धों के गहरे सूत्रों में बाधा और मेरे साथ उसने ऐसा छल किया···? छिः···। पहली बार सुनकर विश्वास नहीं हुआ था मुझे, किन्तु जब आकाशगति से आये दूतों ने मुझे सभी समाचार दिये—वसुदेव के षड्यन्त्रों का रहस्यजाल जतलाया, तभी मैं समझ गया कि यह नीच दंडनीय है···।'

वसुहोम सुनता रहा···उसी तरह गलता गया···पर न होठों से कराह निकली थी न ही यह अवसर दिया था मथुराधिपति ने। लगा था कि इसी तरह शिलावत खड़े रहकर सब कुछ सुनते हुए भी अनसुना कर जाना उसकी नियति है···। सम्भवतः नियति से अधिक समय-धर्म···।

इसी समय-धर्म का निर्वाह किया था वसुहोम ने। पर देवकी और वसुदेव का क्या हुआ है? यह उनकी बातचीत से भी नहीं जान सका था···

मथुराधिपति ने अगले दिन भेंट का समय देकर उस समय उसे विदा कर दिया था। वसुहोम सिर झुकाये हुए लौट आया···वाद्ययंत्रों का गुंजन अब भी मथुरा के नवाकाश पर बिखरा हुआ था···उत्साह-उल्लास उस समय भी उसी तरह सब ओर बिखरे हुए थे···।

□

राजनिवास से लौटते समय भी जानता था वसुहोम—यह सब असत्य है…। और भोर हुए प्रमाणित हो गया था—एकदम असत्य…। सब इस तरह घट गया था, जैसे अविश्वसनीय हो ! वसुहोम ने जो गयी रात सुना था, वह भी अविश्वसनीय और उसकी आंखों ने जो कुछ देखा—वह भी असत्य…।

सत्य केवल यह है कि वसुदेव और देवकी का कुछ अनिष्ट हुआ…। पर किस तरह, क्या हुआ—वह रहस्य…।

वसुदेव-देवकी के विश्वस्त सैनिक और सेवक-सेविकाएं रातोंरात उनके निवास से कहां चले गये थे…किस तरह गुम गये—कोई नहीं जानता। सब, इतना ही जानते थे कि ठीक महाराज उग्रसेन की तरह महामन्त्री और उनकी नवविवाहित पत्नी देवकी सहसा जन-दृष्टि से ओझल हो गये हैं…।

'निश्चय ही वे बन्दीगृह में होंगे…।' वसुहोम के भीतर से एक चीख उठी थी। पर इस चीख को उठाती दूसरी चीख भी उठी—'नहीं'…। संभवत: वसुदेव-देवकी अब इस संसार में हैं ही नहीं !'

दिन बीता…पर इस तरह जैसे अन्धेरे से भरा हो ! सूर्य जनमा किन्तु अपने प्रकाश को ही अप्रभावित करता हुआ-सा…। नगर में फुस-फुसाहटें होने लगी थी—'कहां गये नव-दम्पति ?'

कोई नहीं जानता !

जानेगा कैसे…? न वे दीख रहे हैं, न ही उनके निवास में किसी को जाने की आज्ञा है…। और न ही महाराज कंस या उनके विश्वस्तों में से कोई कुछ कहने-बतलाने को तैयार है ! अनुमानों का एक सिलसिला अविश्वस-नीयता के धुंध से लिपटकर समूचे वातावरण में बिखरा हुआ है…।

बिलकुल वैसा ही धुंध जैसा कभी महाराज उग्रसेन के सहसा राज-निवास से गुम जाने पर जनम आया था…फिर छंटा तो हजारों स्त्री-पुरुष मन मसोसे रह गये थे…'बेबस वृद्ध महाराज'…।

और इस बार उसी तरह संभवत: बेबसी फिर उभरेगी…'बेचारे महा-मन्त्री वसुदेव और सुकोमला देवकी'…।

पर न वसुहोम के मन-मस्तिष्क पर कोई धुँध शेष है, न महाराज कंस और उनके विश्वस्तों पर···। वे सब जाने-समझ रहे हैं—कहाँ हो सकते हैं वसुदेव-देवकी ? और यदि नहीं हैं, तो कब से नहीं हैं···।

दिन के पहर इसी सन्नाटे से भरे बीत गये थे···रात हुई···रात का पहला प्रहर ढला···वसुहोम की तरह प्रजाजनों में जाने कितनों की नींद पलकों पर ही ठहरी रह गयी होगी···

और उनकी नींद का क्या हुआ होगा···? एक थरथराहट के साथ वसुहोम ने आसन पर लेटे-लेटे सोचा था···



वे भी यही कुछ सोच रहे थे···नींद पलकों पर, किन्तु पुतलियों से बाहर। और पुतलियाँ—वे ठहरी रह गयी हैं भविष्य के किसी भयावह अन्धकार में···। न कहीं जीवन-ज्योति दीखती है, न परस्पर उपस्थिति का अहसास···। कैसे हो सकता है यह अहसास जबकि अपना ही अहसास करना असम्भव हो गया है ?

विश्वास कर लेना चाहा था कि वह वसुदेव ही हैं। मथुराधिपति के केवल महामन्त्री नहीं—परम सम्बन्धी ! उनके बहनोई···।

और देवकी ? वे हैं शूरसेन जनपद के शक्तिशाली राजपुरुष देवक की कन्या ! महाराज कंस की चचेरी बहिन। गहरे रक्तसम्बन्ध से जुड़ी हुई···।

लगता है कि सब असत्य है। सत्य है केवल कारागार का यह अन्धकार···। असहायता अनिश्चितता और जीवित होते हुए मृतवत् स्थिति···।

यह भी विश्वास नहीं होता कि कुछ पहर पहले महाराज कंस ने जय-जयकारों और आल्हादपूर्ण वातावरण में अपने बहन बहनोई के लिए स्नेह सम्मान की वह अभिव्यक्ति की थी, जो केवल मथुरा ही क्यों, राज्य के सीमांत पार दूर-दूरंत राजाओं, राजपुरुषों से लेकर जन-सामान्य तक कंस के प्रति श्रद्धा का चर्चा-विषय बनी होगी ?

कुछ प्रहर पहले···एक सूर्योदय पार की विगत वेला···।

जिस समय मथुराधिपति देवकी-वसुदेव के रथ-संचालनार्थ सारथी के स्थान पर सवार हुए थे विशाल जनसमूह ने वर-वधू के प्रति तो श्रद्धा व्यक्त

की ही थी—राजा के जय-जयकार से सम्पूर्ण वातावरण गुंजा दिया था···। हौले से महाराज ने रथ-संचालन किया था···तीव्रगति अश्वों ने कदम बढ़ाये। पुष्पों और स्वर्णमंडित रथ पर झूलते पुष्पों से भरा रथासन आगे बढ़ चला था···

रेशमी साजो-शृंगार से सजी देवकी सलज्जन भाव से वसुदेव के पास बैठी थी। कितनी-कितनी बार उसकी स्वर्णदेह से स्पर्श नहीं हुआ था वसुदेव का···? और हर स्पर्श सितार-सी झनझनाहट बदन में बिखराता हुआ···।

रथ राजनिवास के भव्य से होता हुआ, वृष्णिवंशी शूरसेन के भव्य भवन की ओर बढ़ चला था···महावनों का क्षेत्र पार करता हुआ। आगे पीछे चल रहे थे मथुराधिपति के विशेष अनुचर···। वे सशस्त्र थे—शक्तिशाली भी !

वे सब तीव्र गति से बढ़े जा रहे थे···। नगरसीमा कब की पार हो चुकी थी। महावन के बीचोबीच एकांत मार्ग पर रथ दौड़ाते हुए कंस बातें भी करते जा रहे थे बहनोई से—कहा था—'यह जीवन सचमुच ही अपूर्व सुखानंद से भरा हुआ है मन्त्रिवर···। किसी क्षण मनुष्य पाने का आनन्द अनुभव करता है। किसी क्षण पाकर खो देने में भी आनन्द का अनुभव करता है···। कैसा विचित्र होता है मानव स्वभाव···?'

कुछ समझ नहीं सके थे वसुदेव। पूछा था—'मैं समझा नहीं महाराज ?'

'बहुत सहज है, महामन्त्री···।' कंस ने दार्शनिकता में स्वर डुबा लिया था। वसुदेव को आश्चर्य हुआ। भला कंस जैसे कठोर पुरुष से भावुकतापूर्ण विवेक-वार्ता पाना कितना चकित करता है··?

कंस ने कहा था—'उदाहरणस्वरूप यही स्थिति लो। बहन देवकी को पाकर हमारा कुल जितना आनन्दित था, उससे कहीं आनंदित आज देवकी को खोकर हो रहा है···है न सुख और दुख में आनन्द की विभिन्न अनुभूति···?'

सरल भाव से वसुदेव मुसकरा दिये थे। मन ही मन प्रसंशा करने को जी हुआ था उनका। कंस···तुम्हारे पशुपुरुष में मैंने यह सरलता कभी नहीं देखी ? सुखी हूं ! पर आगे जो कुछ कहें, या विचार सकें—तभी मथुराधिपति फिर से बोल पड़े थे—'सम्पूर्ण जीवन तो मैंने अब तक जिया

नहीं है वसुदेव···किन्तु जितना जिया है और जितना जी रहा हूं — उसमें ऐसे ही सुख-दुख मिश्रित आनन्दों का अनुभव मेरी उपलब्धि रही है···। सम्भवतः आज का दिन उस उपलब्धि का चरम है !'

वसुदेव चुप। अजाने ही दृष्टि कोमलांगी देवकी की ओर उठ गयी थी। उनकी आंखें भीगी हुई थीं। सम्भवतः रक्तबन्धु के स्वर-शब्दों का अर्थ उनके आत्म को ओस से नहला गया था।

वसुदेव शान्त, सहज रहकर सुनते रहे···अचानक कंस ने पुनः कहा था—'राज्य, राजनीति, कूटजाल और परिवार—इन सबके बीच सुख को जुटाए रखना बहुत कठिन और असम्भव होता है न महामन्त्री···? विशेषकर उन स्थितियों में, जब कि राजा कालचक्र के उस प्रभाव से निकल रहा हो जब क्या उचित है, क्या अनुचित। क्या उसके अनुकूल होगा और क्या प्रतिकूल हो जायेगा···निश्चित न कर पा रहा हो ?'

वसुदेव के माथे पर सलवटें आयीं। कंस काफी उलझी बात करते हुए भी काफी कुछ सुलझे से लगे थे। कहा 'राजा केवल नीति होता है, महावीर···। उसका धर्म है केवल राज्यरक्षा···। इसके रक्षार्थ उसके लिए असम्भव का विचार करना अर्थहीन न होता है। केवल सम्भव से विचारना ही उसका धर्म···। और इस सम्भव के लिए कूटजाल, राजनीति, राज्य और परिवार के बीच उसे केवल अनुकूल का निश्चय करना चाहिए···। राजनीति प्रतिकूल को लेकर विचार कभी नहीं करती !'

'हां, आपने उचित ही सुझाव दिया है मन्त्रिवर···। मैंने भी यही निश्चय किया है—मेरा धर्म है केवल राजनीति···। और राजनीति में भी केवल अपना अनुकूल···।' सहसा उन्होंने गरदन मोड़कर वसुदेव को कुरेदा था—'ठीक ही कहा है न मैंने ?'

'निश्चय ही राजन् !' वसुदेव ने समर्थन किया।

'मैं प्रसन्न हूं···'कंस बोले—' उससे भी अधिक प्रसन्न आपकी नीति-युक्त वार्ता पर हूं वसुदेव···। मथुरा के महागणसंघ को सम्हालते समय मैंने सदा ही आपके नीतिमार्ग पर अपना शुभ देखा है। आपके देखे हुए को देखा है, आपके कहे हुए को किया है, आपके सोचे हुए को निर्णय बनाया है···।'

'आभारी हूं मथुराधिपति !' वसुदेव और सहज हुए।

सहसा कंस ने रथ रोक दिया था···एक हल्का झटका अनुभव किया था देवकी और वसुदेव ने। लगाम इस जोर से खिंची थी कि अश्व तीव्र स्वर में हिनहिनाये···रथ जोरों से हिला और थम गया !

पति-पत्नी चौंके—क्या हुआ···? शब्द दोनों के होंठों से बाहर आये, इसके पहले ही कंस हंसते हुए उतर पड़े रथ से···। स्वर अनायास ही कठोरता के पथरीलेपन से भर गया था। बोले—'बस···। आज भी आप ही के निर्देशानुसार चलूंगा, महामन्त्री···।'

वसुदेव हकबकाये-से देखते रहे। समझ कुछ भी नहीं आया।

कंस ने आगे-पीछे अनुचरों को रथ के चारों ओर खड़े देखा।

रात्रि गहन होने लगी थी। रथ पर दांये-बाये प्रकाश हो रहा था। कुछ अनुचर खड़े थे।



वसुदेव-देवकी अब भी नासमझ भाव से देख रहे थे कंस को। पल भर पहले कहे गये शब्दों का अर्थ इस समय भी अबूझा था···। इतना निश्चित था कि उन शब्दों में कुछ गूढ़ रहस्य छिपा हुआ है···।

पर क्या है? यह कल्पनातीत !

कंस की सहज, स्वाभाविक मुद्रा इस समय तक कठोर हो चुकी थी। उनका एक हाथ खंग की मूठ पर रखा हुआ था···। किसी भी क्षण यह मूठ पंजे की जकड़ में आयेगी और विद्युत-कौंध की तरह खंग को बाहर खींच लेगी···। फिर इस तरह खंग से क्या होगा—यह सोच-समझ पाना असम्भव···।

वसुदेव या देवकी किसी तरह के खतरे में हो सकते हैं ? यह तो विचार भी नहीं किया जा सकता था···। हो भी तो कंस ऐसे निर्मम तो नहीं कि अपनी ही बहिन को वैधव्य भोगने पर बाध्य कर दें···?

वसुदेव ने प्रश्न किया था, 'क्या हुआ राजन् ?'

कंस हंसे, कहा—'कुछ नहीं, केवल वही हुआ है मंत्रिवर जो आपने कहा था···या तुम जैसे सुयोग्य व्यक्ति की सलाह से होना चाहिए···। हर राजा अपने महामन्त्री के शब्दों को ही नीति और धर्म मानता है—उसे ही मानकर मैं तुम्हारा वध करने जा रहा हूं !'

वध ''।

लगा था कि शब्द सब ओर गूँज गया है ! ऐसे जैसे बिजली कड़की हो ! उल्का गिराती हुई'''। पर यह शब्द सच ही वसुदेव के लिए कहा गया है—यह इस क्षण भी वसुदेव और देवकी के लिए अविश्वसनीय !

'रथ से नीचे आ जाओ, वसुदेव'''।' सहसा कंस के जबड़े कस गये थे'''।

पूछना चाहा था—क्यों महाराज'''? केवल पूछना ही नहीं चाहा था, चीख पड़ना चाहा था'''पर आवाज गुम हो चुकी थी !

और उससे भी अधिक गुम हो गयी देवकी ! अपने में होते हुए भी अपने से अलोप ! जितना नाटकीय लगा था सब, उससे कहीं अधिक अविश्वसनीय ! सवादों के पूरे तीन दौर हो जाने पर भी देवकी विश्वास नहीं कर पा रही थी कि उनके कठोर स्वभाव भाई जो कुछ बोले हैं—वह सच है ?

वसुहोम ने जो सूचना दी थी—वह सत्य निकली'''। वसुदेव की तीव्र-बुद्धि ने भांप लिया था । कंस का व्यवहार न तो इस विचार के साथ अप्रत्याशित लगा था, न ही असहज । वह उतरने लगे थे रथ से'''देवकी ने कलाई थाम ली थी उनकी 'नहीं, देव'''। नहीं !'

देवकी को हौले से परे करने की चेष्टा की थी वसुदेव ने । स्वर में संयम रखा था, उससे कहीं अधिक सन्तुलन । बोले थे 'राजाज्ञा का सम्मान करना मेरा धर्म है, देवी'''। और मथुराधिपति का आदेश मेरे लिए गौरव का विषय है'''।'

देवकी विह्वल स्वर में बिलख उठी थी'''नहीं-नहीं, स्वामी'''। यह सब असह्य है'''।' अचानक वह भाई की ओर मुड़ी थी—'पूज्य'''। यह निर्दोष हैं। फिर मेरे सौभाग्य भी हैं'''आपके परिजन हो चुके हैं'''इन पर दया कीजिए !' देवकी का हर शब्द रुलायी से कहीं अधिक उस थरथराहट से भरा हुआ था जो किसी बाणविद्ध हिरणी की आकुल तड़प से जनमती है ।

'मैं भी यही विचार करता था बहन'''। किन्तु मुझे खेद है—वसुदेव ने राजद्रोह किया'''। अपना सम्पूर्ण विश्वास और नेह इस दुष्ट को सौंपते हुए भी इसने वह सब किया जो कोई शत्रु ही कर सकता है'''। इसका जीवन मेरे लिए घातक है'''। इसका रक्तपात भी मेरे लिए घातक ही

रहेगा'''। मैं वाध्य हूं।'

'नहीं-नहीं, भईया'''।' देवकी सिसकने लगी थीं। वसुदेव उनकी बिलखन बिसराकर केवल रथ से उतर गये थे'''

कंस ने खंग खींचा'''लगा जैसे प्रकाश की वे किरणें खंग की धारा से जुड़कर बिजली की असंख्य कौंधें बन गयीं'''। देवकी के होंठों से एक चीख निकली और वह वायुगति से रथ से उतरकर पति के आगे आ खड़ी हुई'''उनका शृंगार अस्तव्यस्त हो गया था'''सौन्दर्य की आभा मुख से लुप्त होकर मृत्युभय की कालिख से लिप गयी'''एक चीख उठी—ऐसे जैसे आकाश मे घायल हुआ पंछी छटपटाकर पृथ्वी पर गिरा हो—'नहीं•ईं'''।

कंस का हवा में उठा कठोर हाथ सहसा थम गया। वसुदेव की गरदन के आगे देवकी का नाजुक सिर था'''।

पल भर के लिए हवा मे ही टंगा रह गया था हाथ'''चमकता खंग उस हाथ ने जकड़ा हुआ ''जबड़ो पर थरथराहट हुई'''मन के मरुस्थल में न जाने कहा से करुणा का एक सोता फूट निकला'''यह सोता झरझराकर उनसे कह रहा था—'नहीं-नहीं कंस'''। तुम अपनी बहिन को वैधव्य नहीं दे सकते'''। इसे कितना नेह करते आये हो तुम'''? तुम—ऐसा नहीं कर सकोगे''' इन्हीं बाहों मे कितनी बार देवकी को स्नेहपूर्वक भरा है तुमने'''

थूक का घूंट निगल लिया था कंस ने। कठोर निश्चय पिघलने लगा''' किन्तु वसुदेव से भयमुक्त नहीं हो सके। अपने ही भीतर पूछ बैठे थे—'तब'''तब क्या करूंगा मैं'''? वसुदेव का जीवन मेरी मृत्यु है'''। वसुदेव जैसे व्यक्ति के रक्त से उत्पन्न होनेवाली हर सन्तान मेरे नाश का कारण बनेगी'''। यह निश्चित सूचना-अनुमान पूर्व में ही मुझे मिल चुके हैं''' तब?'

'तब तुम नीतिपूर्वक काम ले सकते हो कंस'''।' विचार उसी गति से मन में आया, जिस गति से प्रश्न जनमा था'''तुम वसुदेव को महाराज उग्रसेन की तरह ही कारागृह मे डाल दोगे'''। तुम देवकी-वसुदेव से उत्पन्न हर सन्तान को जनमते ही नष्ट करते जाओगे! इस तरह तुम सदा भय-

मुक्त रहोगे···। सदा निष्कंटक मथुराधिपति का दायित्व निबाहते रहोगे···। सदा तुम्हारा राजस्व बना रहेगा···'

कंस थम गये थे। उनका क्रोध, निश्चय और कठोर निर्णय सहसा कमजोर हो गया था। सहमति के सहारे से थमा हुआ···हां, यही उपयुक्त होगा! यही नीतियुक्त! यों भी वसुदेव की समाप्ति किसी भी विद्रोह को जन्मांकुर बन सकती है!

देवकी उस समय भी प्रार्थना किये जा रही थी। आंसुओं से चेहरा भर गया था उसका, 'भईया···। इन्हें क्षमा कर दो···। विश्वास रखो, अब भूरसुत ऐसा कुछ नहीं करेंगे जिससे तुम्हारा कुछ प्रतिकूल हो···? मुझ पर दया करो। वीरवर···।' वह झुकी थी···थरथराती हुई कंस के चरणों में गिर गयी थी···

कंस कुछ पल थके-से खड़े रह गये थे।

'···हम कहीं दूर···मथुरा से बहुत दूर चले जायेंगे, भईया किन्तु···'



'रुको भगिनि···।' सहसा कंस बोले थे—'उठो··· ।' फिर उन्होंने एक बांह थामकर देवकी को अपने चरणों से उठा लिया था···।

वसुदेव बुत बने देखे जा रहे थे···देवकी की अथकित सिसकियां···कंस का थमा हाथ, जिसमें उस समय भी खंग चमक रहा था···

पल के लिए सन्नाटा बिखरा रहा···इस सन्नाटे को रह-रह कर तोड़ती देवकी की कोमल सिसकियां···

एक गहरा—ऐसा, जिसका स्वर वसुदेव और देवकी दोनों ही सुन सके थे—श्वास खींचा-उगला था कंस ने। कहा था, 'बैठो···। रथ पर बैठो!'

वे चुपचाप रथ में बैठ गये थे। विचार-शून्य। और फिर कंस ने पुनः सारथी का स्थान सम्हाल लिया था···लगाम पर एक जोरदार झटका पड़ा था, अश्व मुड़े—और एक-दूसरी राह दौड़ चले।

यह राह थी कारागाह की···।

और कुछ समय पश्चात ही वे कारागार के द्वार पर थे। सेवकों ने आगे बढ़कर प्रतिहारियों को फाटक खोलने का आदेश दिया···फाटक खुला 'और महाराज कंस चालित रथ भीतर पहुंच गया···'

अधीक्षक ने महाराज की अगवाई सुनते ही उपस्थिति दी। महाराज का आदेश हुआ, विशेष कारागार तुरन्त खोला जा जाये'''।'

'''और उसके बाद सब कुछ बिना किसी शब्द-संवाद के घटा था। वसुदेव और देवकी उसी स्थिति में कारागार के भीतर पहुंचा दिये गये थे। सींखचों के द्वार पर जड़ दिया गया था एक बड़ा ताला !

महाराज वापस हुए'''कुछ समय सींखचों के पास खड़े हुए वसुदेव दूर बहुत दूर कारागृह अधीक्षक और अधिकारियों के बीच से उभरते कंस के स्वरों की गड़गड़ाहट सुनते रहे, फिर मुड़े '''

देवकी कारागृह की कठोर विश्राम शिला पर बैठी हुई दोनों घुटनों में सिर दिये अब भी सिसक रही थी'''होठों पर जीभ फिहराते हुए वे धीमे कदमों उनके पास जा खड़े हुए थे। मस्तिष्क और मन के भीतर तक ऐसे शब्दों को खखोलने लगे थे, जिन्हें उच्चरित कर देवकी को धीरज बंधा सकें'''

पर लगा था कि खाली हो गये हैं'''। ऐसे जैसे उनके अपने मन के भीतर भी एक अंधेरा कारागार मौजूद है।

रात गहरी होती जा रही थी'''और वे शरीर, मन मस्तिष्क हर तरह से थके हुए थे'''कुछ समय पूर्व का उल्लास केवल रोदन की शब्दहीन स्थिति में बदल चुका था'''शेष रहा था सोच'''निरन्तर चलने वाला सोच'''

फिर वह पल आये जब नींद थी, किन्तु पलकें शरीर से अकेला । विचार थे, किन्तु भविष्य के उन भावमी अंधकार में दिशाहीन भटकते हुए वे स्वयं थे, पर न होने का अनुभव करते हुए'''।

मानसी भटकी-भटकी दृष्टि से सब कुछ देखे गयी थी···कब से, कब तक देखती रही होगी—स्मरण नहीं। केवल इतना स्मरण है कि विवाहोत्सव की धूमधाम में मानसी को बिठाये हुए वह विशेष रथ कब तक और कैसे मथुरा की सीमा पार कर आया था···ज्ञात नहीं···। उसके आगे एक और रथ था···। रथ—जिसमे बकुल बैठा हुआ था। बकुल से आगे एक छोटा-सा रथ—इस रथ मे बिठायी गयी थी अशनिका···।

रात ढली थी, फिर भोर हुई···। वे मथुरा गणसंघ के सीमाक्षेत्र को लाघ चुके थे। दोपहर भी उसी शून्य को माथे और मन मे भरे हुए बीत गयी···। फिर एक और रात्रि आरम्भ हुई, जिसमें शून्य भी विलीन हो चुका था··· शेष रहा था केवल अंधकार! अंधकार, जिसमें न तो मानसी स्वयं को देख पा रही थी, न ही कुछ और। जो दिख रहा था, वह केवल स्वरानुभव से दीखता था···वे चले जा रहे हैं—निरन्तर···बिना रुके और थमे हुए!

अब संभवतः कंस कभी नही दीखेंगे···। न मथुरा और न मथुरा का वह राजवैभव, जिसे मानसी ने मन में एक आकार दे लिया था। किसी क्षण होता था कि अपनी ही बेबसी पर हंसे और किसी क्षण चाहा था कि रो पडे···किन्तु लगता था कि वह मथुरा से गिरिव्रज की राह पार करते-करते अपना रोना-हंसना, सब कुछ भूल आयी है···।

कुछ सिसकियां हैं जो इन राहो मे कही-पीछे—बहुत पीछे छूट गयी है। कुछ हंसी है, मथुराधिपति और उससे भी पहले युवराज कंस के बाहुपाशो में ही बिखरी रह गयी है···।

अब न मानसी कभी हंस सकेगी—न रो पायेगी…।

तब मानसी—मानसी ही कहां है…? और अगर नही है, तो यह रथारूढ होकर क्या चला जा रहा है गिरिव्रज…?

संभवतः मानसी को मानसी होने का वहम…! एक शरीर—मन, विचार से खाली खोखली प्रतिमा…! इसे छुआ जाये तो सन्नाटे को तोड़ती आवाज आयेगी ! यह आवाज चीख होगी या केवल स्वर—निश्चय करना कठिन…!

सहसा मानसी को लगा था कि झटका लगा है—शरीर हिल गया था उसका। रथ थम गया…!

बाहर से कुछ फुसफुसाहटें उभरी। बकुल की आवाज स्पष्टतः सुनी थी। वह आदेशपूर्ण स्वर में मानसी के रथ-सारथी से कह रहा था—'उतरो…! अब रथ संचालन मैं स्वय करूंगा…!'

मानसी ने चाहा, पूछे—'क्यों ?' पर लगा व्यर्थ है। उसके लिए कुछ रुचिकर भी नही न ही औत्सुक्य का विषय…।

बकुल की आवाज पुनः कौंधी—'यह रथ सबसे आगे चलेगा…! मेरा और देवी आशनिका का रथ एक ओर कर लो…!' कुछ गड़गड़ाहटें हुई और फिर संभवत. मानसी का रथ चला…वह आगे हो गया होगा…।

मानसी ने सोचा, फिर बिसार दिया…! उसका रथ आगे चले, या पीछे—उसकी कोई रुचि नही !

अचानक एक झटका और लगा…लगा कि रथ ने आश्चर्यजनक गति ले ली है…! मानसी हिचकोले खाते हुए बैठी रही…अन्धकार मे केवल रथ से जुड़ी प्रकाश व्यवस्था एक धब्बे की तरह आस-पास के जगल पर दौड़ती दिखी…फिर यह धब्बा कांपा, जोरों से लड़खड़ाया…अश्वों का चीत्कार उठा, मानसी अपनी जगह पर बुरी तरह लड़खड़ायी…सम्हले इसके पूर्व ही उसे लगा कि वह अन्धकार में गिरती, उछलती न जाने कितनी गुलाटें खा गयी है…चीखी भी थी—पर अपनी ही चीख सुन सके—इतना भी अवसर नही मिला था उसे…!

कितनी जगह मे अंग-प्रत्यंग टूटे होंगे, कितनी जगह से शरीर फट पडा होगा…कितने अंगों को रथ के लौहखडो ने चीर डाला होगा—पता नहीं

···बस, इतना पता है कि मानसी के गिर्द अंधकार है···यह अंधकार गहरा और अधिक गहरा होता जा रहा है···इस अंधकार में कुछ स्वर उभर रहे हैं···संभवतः बकुल के स्वर हैं···पर कितने दबे—डूबते हुए से—'खेद है अशनिका···मगधराज का यही आदेश था !···'

संभवतः है···और भी कुछ कहा बकुल ने···अशनिका रोयी भी है शायद ···किन्तु कितने धीमे—निःशब्द-सी रोती है अशनिका···? मानसी ने चाहा है कि चकित हो···? मानसी उसे पुकारना भी तो चाहती है···शायद पुकारा भी है उसने पर अशनिका संभवतः सुन नहीं सकी···।

और मानसी भी तो अपने आपको सुन नहीं पा रही है···पीड़ा की असंख्य लहरें हैं जो ज्वालाओं की तरह मानसी के सम्पूर्ण को घेरे हुए हैं··· इन ज्वालाओं में कुछ देखना चाहती है मानसी···पर विचित्र स्थिति है ! इन ज्वालाओं में भी उसे अन्धकार ही दीख रहा है···और दीख रही है—अन्धकार में एक और अन्धेरी आकृति। यह उसकी अपनी है या कंस की···?

संभवतः यह आकृति न कंस की है, न उसकी अपनी···यह आकृति तो किसी अपरिचित की है। उसकी—जिसे उसने कभी देखा नहीं। परिचय भी नहीं हुआ है उसका किन्तु बहुत मोहक है यह आकृति···।

यह भी विचित्र ! भयावह होते हुए भी सम्मोहक···! पीड़ाजनक होते हुए भी पीड़ा मुक्ति का विश्वास दिलाती हुई···! बड़ी झुलसन के साथ, तीव्रगति से किसी शीतल जलसागर में डुबकियाँ देती हुई···।

गड़गड़ाहट भी सुनी है उसने···संभवतः बकुल और अशनिका के रथों के जाने की गड़गड़ाहट···बहुत मद्धिम गड़गड़ाहट फिर वह विलीन हो गयी है वातावरण में ! मानसी को भी लग रहा है कि वह कहीं जा रही है—पर कहाँ जा रही है—ज्ञात नहीं। किस रथ में जा रही है—यह भी पता नहीं। इस रथ की आवाज नहीं होती···हो तो न मानसी सुन पा रही है, न कोई और सुन पायेगा···।

यह यात्रा किस मथुरा या गिरिव्रज की है सो भी ज्ञात नहीं···पर है यह यात्रा ही ! इस यात्रा में न शरीर है न इच्छा, न पीड़ा, न आनंद···

बस, केवल यात्रा है...! किसी कालचक्र की सीमाओं में बन्दी नहीं हैं इसके रास्ते।...रास्ते इसके अनंत-चक्र जैसे लगते हैं—शायद यही हैं।

मानसी ने चाहा है पलकें मूंद लें...पर भला यात्रा में पलकें मुंदती हैं...?



श्रीकृष्ण-कथा : चरित्र, चित्र और दृष्टि

पिछले दिनों जब मैंने महाभारत पर आधारित अपने (१२ खंडीय) उपन्यास को समाप्त किया, तब मेरे मन में रह-रह कर यह इच्छा होने लगी कि मैं श्रीकृष्ण के जीवन पर वृहद उपन्यास लिखूं। पर एक संकोच भी होता था कि कहीं आदि-अन्त से हीन प्रकृति-पुरुष पर लिखते समय मैं डगमगा न जाऊं। बहुत दिनों तक यह इच्छा—केवल इच्छा ही रही, पर उस बीच निरन्तर कोई अदृश्य चेतन-शक्ति मुझे बाध्य करती रही कि कुछ ऐसा है, जिसे मैं अपने भीतर दबाये हुए हूं और उससे मुक्ति पाये बिना, मेरी भी मुक्ति संभव नहीं। लगातार अपने भीतर मैंने एक आकुल व्यग्रता और बेचैनी अनुभव की। जिन शब्दों में उसे व्यक्त किया जा सकता है—वे शब्द मेरे अजाने हैं, या यह कहूं तो अधिक उचित होगा कि उन शब्दों का अविष्कार संभवतः अब तक हुआ ही नहीं है।

'महाभारत' पर आधारित उपन्यासों पर मेरे असंख्य पाठकों ने मुझे जो पत्र लिखे, अपनी स्नेहिल प्रतिक्रियाएं व्यक्त की, उनमें से बहुतों ने मुझे लगातार यह प्रेरणा भी दी कि मैं श्रीकृष्ण पर अवश्य ही वृहद उपन्यास की रचना करूं। कुल मिलाकर एक एक ऐसी स्थिति बनी, जिसने यह दुष्कर प्रयत्न करवाया है और उसी प्रयत्न का प्रारंभ यह प्रथम खंड है। 'अनन्त' शीर्षक से, इसके पूर्व मैंने महाभारत पर आधारित अपनी उपन्यास शृंखला में श्रीकृष्ण के जीवन का एक अंश (वह भी संक्षिप्त रूप में) लिया था और उसकी भूमिका में स्पष्ट किया था कि वह समय काल की सीमाओं से परे चरित्र हैं। उन्हें उनके जीवन काल में ही न केवल ईश्वर सम्बोधित किया गया, अपितु स्वीकारा भी गया। असंख्य तपस्वियों, विद्वानों, योगियों, राजनीतिज्ञों, वैज्ञानिकों और समग्र ने उन्हें उनके रहते ही ईश्वर के रूप में

माना और जाना है। 'महाभारत' में महर्षि वेदव्यासने जब-जब उनका जिक्र किया है, तब-तब उन्हें ईश्वर ही कहा है। आलौकिक घटनाओं से पूर्ण वह पूर्णत. लौकिक हैं। मनुष्य रूप मे दीखते हुए भी उनके जीवन-वैविध्य ने उनके विराट रूप का दर्शन कराया है। वे सामान्य दीखते तो हैं, किन्तु निरतर असामान्य की तरह मन में उभरते हैं। किसी बार वे बालक की तरह सरल दीखते है, किसी बार वे ब्रह्मांड की तरह अनंत रहस्यों से भरे लगते है। सीमित और अत्यन्त अल्प जीवन मे भी उन्होंने जो कुछ, जिस तरह कर दिखाया है वह मानवीय रूप में घटते हुए भी मानवीय शक्ति से परे लगता है। शरीरधारी होते हुए भी वह जल की तरह अनुभव भर किये जा सकते हैं, उन्हें सम्पूर्णता मे सहेज पाना असभव है—ठीक उस समुद्र की तरह जो दीखता तो है पर सीमाहीन और अजानी गहराइयो से भरा होता है।

वह एक साथ जड़, और चेतन, सिद्धि और साध्य, सत्य और असत्य, दर्शित और अदर्शित मानवीय और अतिमानवीय हैं। उन्हे सहेजने का प्रयत्न करना ऐसे ही है जैसे असंख्य आकाशगगाओ को कोई अपनी बाहों मे भरने की असंभव चेष्टा करें।

पर जैसाकि होता आया है, बहुतो ने बहुत बार यह प्रयत्न किये हैं··· श्रीकृष्ण पर आधारित मेरा यह उपन्यास-लेखन भी उन्ही असख्य चेष्टाओं में से एक चेष्टा है। चूंकि आकाशगंगाएं बांहों मे भरी नही जा सकतीं, अतः श्रीकृष्ण इन दस खण्डो में सहेजे जा सकेंगे—यह असंभव है। पर अपने पूर्ववर्ती अनेक लेखकों की तरह एक सन्तोष अवश्य पा सकूंगा कि मैंने भी यह सुख जुटाने की चेष्टा की···वैसी कोई एक किरण भी पा सका, तब स्वयं को कृतकृत्य मानूंगा।

इस प्रथम खण्ड 'कालचक्र' को लेकर स्पष्ट करने के पूर्व मैं कुछेक बातें पाठको के सामने और स्पष्ट कर देना चाहता हूं। मैंने इस उपन्यासमाला मे प्रयत्न किया है कि श्रीकृष्ण के जीवन के कुछ अछूते पहलू पाने की चेष्टा करूं और आज के सन्दर्भ मे उनके कुछ कार्यों, विचारों और दृष्टियों को उभारूं जो साधारणतः या तो अजानी रही हैं अथवा नये पाठक के सामने आकर भी वांछित रूप मे स्पष्ट नही हो सकीं। श्रीकृष्ण को ले

कोई लेखक या विचारक लाख चेष्टाएं करे कि उन्हें मात्र मानव रूप में प्रस्तुत किया जाये, किन्तु वह इस कारण संभव नहीं है कि श्रीकृष्ण अपनी लौकिकता में ही असंख्य अलौकिकताओं से भरे हुए हैं। उनसे परे रहकर श्रीकृष्ण पर विचार या वर्णन कर पाना असंभव है। अत: मेरे कृष्ण अपनी सम्पूर्ण लौकिकता से जुड़कर भी उस अलौकिकता से कहीं, किसी भी बार अलग नहीं हो सके हैं जो उन्हें असंख्य में केवल एक बनाती है, सहस्रों की गिनती में शून्य की तरह सदा ही अस्तित्ववान और उपस्थित हैं। इस उपस्थित में अनुपस्थित का वर्णन करते हुए निस्सन्देह लेखकीय दृष्टि से मुझे बहुत बार कठिनाई हुई है किन्तु मैंने चेष्टा अवश्य की है। कितनी हो पायी है—यह पाठकों के निर्णय पर निर्भर है।

'महाभारत' पर लेखन-पूर्व भी मैंने यह स्पष्ट किया था और इस कृष्ण कथा के लेखन-पूर्व भी मैं यह दोबारा स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि किसी भी लेखक को यह अधिकार निश्चय ही नहीं है कि वह पौराणिक और ऐतिहासिक संदर्भों में अपनी निजी औपन्यासिक बुद्धि से तोड़े-मरोड़े, या नष्ट करें। उसका लेखकीय अधिकार उसे केवल इतनी ही स्वीकृति देता है कि समय, काल और चरित्रों को लेकर तार्किक ढंग से वर्तमान सन्दर्भों में उनका प्रस्तुतीकरण करें। उन्हें नयी अभिव्यक्ति दें, उनके सहज और स्वाभाविक सन्दर्भों को नयी दृष्टि से देखे खोजें। इससे अतिरिक्त चेष्टा संस्कृति और सांस्कृतिक ग्रन्थों के प्रति लेखकीय धृष्टता होगी। मैंने इस सीमा में रहकर ही सम्पूर्ण लेखन किया है और सावधान रहा हूं कि ऐसी कोई लेखकीय धृष्टता न हो।

कृष्ण-द्वैपायन (वेदव्यास) लिखित मूल महाभारत में श्रीकृष्ण का कार्य-व्यापार बहुत कुछ वर्णित हुआ है, किन्तु श्रीकृष्ण के सम्पूर्ण जीवन को संजोया, एकत्र किया जाए तो वह बहुत संक्षिप्त है और केवल उतना ही है, जितने का सम्बन्ध 'महाभारत' की मूल कौरव-पांडव कथा से आता है। श्रीकृष्ण सम्बन्धी विभिन्न पुस्तकों के अध्ययन तथा श्रीकृष्ण के जीवन की अनेक घटनाओं से जुड़े विभिन्न स्थानों का दौरा करने के बाद मुझे जो कुछ जानने, समझने और प्रमाण एकत्र करने में अनुभव हुआ, उसके अनुसार मुझे लगता है जैसे 'महाभारत' में वर्णित श्रीकृष्ण का कार्य उनके जीवन का

मात्र २० प्रतिशत हिस्सा ही है। शेष श्रीकृष्ण का ८० प्रतिशत का जीवन, सम्पूर्ण भारत और भारत से भी बाहर समुद्र-पार यात्राओं, जय-पराजय और निरंतर संघर्षों से भरा हुआ है। यह ८० प्रतिशत कर्मठ जीवन ही श्रीकृष्ण के उस विराट स्वरूप का दर्शन है जो कालखंड की सीमाओं से परे उनके सर्वव्यापी अस्तित्व का दर्शन कराता है। कर्मपथ से पूर्ण यही जीवन और कार्य-व्यापार है जो श्रीकृष्ण को अपने ही जीवन काल में मनुष्य रूप होते हुए भी भगवान के रूप में स्वीकार भी करता है। यही ८० प्रतिशत लौकिक जीवन अनेक विलक्षण अलौकिकताओं से भी पूर्ण है। उनका चिन्तन, योग-शक्ति, दर्शन, राजनीति, समाजदृष्टि, मूल्यवाद, समय-समय पर की गयी धर्म व्याख्या और मोहहीनता की अगाध तपस्या की ईश्वरता है तो इसी ८० प्रतिशत जीवनखंड की यात्रा में देखा जा सकता है। यह जीवनखंड इतना अद्भुत और अलौकिकता से भरा हुआ है कि वस्तुतः मनुष्य उन्हें 'ईश्वर' स्वीकारता है। बहुत सीमा तक इस कारण भी उनके सम्पूर्ण को उनकी तरह अपने जीवन में नहीं उतार सकता। मानव रूप में उनका यह अति रूप ही उनको 'ईश्वरत्व' प्रदान करता है।

जब-जब किसी कवि या रचनाकार ने श्रीकृष्ण के इस चित्र को शब्दों में व्यक्त करने की चेष्टा की है, तब-तब उसे विभिन्न रूपकों, प्रकृतिचित्रों और श्रद्धा का सहारा लेना पड़ा है। इन चित्रों ने उनकी सहज मानवीय लीलाओं को भी इतनी अतिशयता प्रदान कर दी है कि वह और उनका बहुत सा जीवन-अंश मानव जीवन में ग्राह्य होते हुए भी अग्राह्य हो गया है। उनका ज्ञान, विचार, दृष्टि और अनेक कर्म केवल पूजा की वस्तु बनकर रह गये हैं। समय और कालखंड के इन बीतती सदी ने उन्हें और-और जटिल बना डाला। इस जटिलता ने देश, समाज, जाति और राष्ट्र ही नहीं मानवमात्र को बहुत प्रभावित किया। अनेक ऐसे कर्म जो जीवन, व्यवहार समाज, दृष्टि राष्ट्र जीवन और मानव मूल्यों में निरंतर व्यवहृत होते रहे थे, अनायास ही इनसे दूर हो गये।

फिर एक और कालखंड आया। यह कालखंड तात्कालिक राजनीतिक सामाजिक स्थिति के कारण देश और समाज को बचाने के बौद्धिक और रचनात्मक से भरा हुआ था। इस दौर में श्रीकृष्ण-भक्ति के विभिन्न

भक्ति-मार्गों का प्रारम्भ हुआ। भिन्न-भिन्न पद्धतियों और विचारों के साथ भगवान श्रीकृष्ण का आराधन और पूजा की जाने लगी। निस्सन्देह सभी सम्प्रदायों और भक्ति मार्गों का एक निश्चित लक्ष्य था भारतीय समाज मूल्यों की रक्षा और बहुत सीमा तक यह सब इन माध्यमों से पूरा भी हुआ किन्तु मुझे लगता है जैसे समय-काल की इन विभिन्न करवटों के कारण श्रीकृष्ण के जीवन का बहुत-सा लौकिक और सहज व्यवहृत हो सकने वाला रूप भी क्रमशः जटिल और जटिलतर होता चला गया। या यों कि श्रद्धा और भक्ति के पर्वत-सदृश्य आकार ने उसे अपने भीतर दबा लिया।

योगी, ज्ञानी, पराक्रमी, मोहहीन, दार्शनिक, चिन्तक, राजनीतिज्ञ, धर्माधर्म के श्रेष्ठतम् व्याख्याता, कर्मवादी, और मोहक श्रीकृष्ण के विराट ईश्वररूप को विभिन्न चेहरे मिले और इन चेहरों में जो चेहरा सर्वाधिक प्रभावी सिद्ध हुआ, वह था बृजविहारी श्रीकृष्ण का। वह श्रीकृष्ण, जो गोपियों के प्रेम मे रसपगे हैं या जिनके प्रेम मे गोपियाँ रग गयी हैं। यह इतना लुभावना और मोहक इन्द्रधनुषी रूप था, जिसने श्रीकृष्ण के अति कर्मवादी और अन्य रूपो को समाप्त तो नही किया किन्तु धुंधला अवश्य कर दिया। निस्संदेह श्रीकृष्ण का एक प्रेमल रूप है और वह मनुष्य मात्र को आनंद और तृप्ति का बोध भी कराता है, किन्तु श्रीकृष्ण के विराट स्वरूप का वह अंश मात्र है, सम्पूर्ण कृष्ण नही। सम्पूर्ण कृष्ण का यदि अंश-संयोजन भी वर्तमान को मिल जाये तो जीवन-जगत के अनंत रहस्यों से मनुष्य परिचित हो सकता है—यह मेरा मात्र विश्वास नही—दावा है।

श्रीकृष्ण के जीवन पर आधारित इन दस उपन्यास खण्डों मे मेरा यही दृष्टिकोण है कि उनके विराट रूप का अंश-सयोजन करूं। इस संयोजन में मोहक और आनंददायी कृष्ण तो आयें ही, साथ ही वे श्रीकृष्ण भी आयें जो धर्माधर्म के व्याख्याता है। जिन्होने पहली बार भरत खड को राष्ट्रीय एकात्म की धारा में जोड़ने की न केवल कल्पना की, अपितु निरंतर प्रयत्न भी किये। जिन्होने पहली बार राज्यो क्षेत्रों और राजाओं से परे होकर सम्पूर्ण देश के सन्दर्भ में विचार किया। यही नही, वे कृष्ण भी उभरें, जिन्होने भारतीय राजनीति और समाज-व्यवस्था मे लगभग मृत हो

चुकी गणसंघ-परम्परा या कि आज के शब्दों में जनतन्त्र को पुनर्जीवित किया।

सामान्यत: आधुनिक इतिहास और दृष्टि में जनतंत्र-प्रणाली का उद्भव पश्चिम से हुआ, ऐसा माना जाता है। इसके साथ-साथ यह भी माना जाता है कि विश्व इतिहास और राजनीति धारा में जनतंत्रीय राजप्रणाली की कल्पना पहली बार और व्यावहारिक दृष्टि से अनुकरणीय तौर पर पश्चिम ने ही दी, किंतु भारतीय संस्कृति और इतिहास के लिए 'गणसघ-व्यवस्था' या कि जनतंत्रीय राज पद्धति नयी व्यवस्था नहीं है। जिस तरह ईसापूर्व के मानव-इतिहास में यह स्वीकारा गया है कि मिस्री शासन प्रणाली में जनतन्त्रीय शासन-पद्धति थी, उसी तरह भारत में भी हजारों वर्ष पूर्व यह जनतंत्रीय पद्धति थी। एक अलग पहलू यह हो सकता है कि वह वर्तमान की तरह 'मतदान' की व्यवस्था से न चलती रही हो, किन्तु इतना सच है कि किसी न-किसी रूप में वह लोकमत के आधार पर चुने गए क्षेत्रीय मुखियों के एकत्र संगठन से ही संचालित होती थी। मथुरा को गणसघ कहा गया है। यह गणसघ मथुरा के आस-पास के इलाके को, जिसे 'शूरसेन जनपद' कहा जाता है—से बना था जनपद में पांच स्थल और बारह वन थे इन सभी से जिनमें अन्धक, वृष्णि और भोजवंशी यादव बसे हुए थे, एक-एक मुखिया होता था। इन मुखियों ने मथुरा के मुखिया को सर्वसम्मति से अपना प्रमुख या राजा मान रखा था। इस तरह मथुरा में गणसघीय पद्धति की राज-व्यवस्था थी। इस राज-व्यवस्था को जब सम्राट जरासन्ध ने अपने राजनीतिक षड्यंत्र से अधीनस्थ करना चाहा, तब गणसघीय व्यवस्था में विभिन्न दोष पैदा हुए और पहली बार राजनीतिक अवरोध जनमा। इस अवरोध का कारण मथुरा के राजा उग्रसेन का सगा पुत्र कंस स्वयं बना, जिसने लोकमत पर सैनिकशाही थोपी। श्रीकृष्ण ने इसी कंस का वध करके पुन: संघीय राजप्रणाली को पुन: स्थापित किया। और यही वह समय था जबसे कि श्रीकृष्ण का वह कर्मयज्ञ आरम्भ हुआ, जिसमें उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन लगाया।

कृष्ण-कथा पर अधारित मेरे सम्पूर्ण उपन्यास श्रीकृष्ण के इस कर्मवादी जीवन की कथा में आयोजित हैं। मैंने प्रयत्न किया है कि यह

उपन्यासमाला यथार्थ और तार्किक विवेचन के साथ-साथ ऐतिहासिकता से भी जुड़ी रहे—कितना, कहां तक हो पाया है, यह पाठकों के निर्णय पर छोड़ता हूं।

यह मेरी निश्चित धारणा है कि श्रीकृष्ण अथवा उन जैसे किसी 'ईश्वर स्वपूर्ण जीवन पर लिखने के लिए कोरा लेखक होना भर काफी नहीं है—अपितु यह अनिवार्य है कि श्रद्धा संजोकर इस तरह के किसी कार्य को हाथ में लिया जाये। बिना श्रद्धा या आस्था के तो साधारण मनुष्य पर भी नहीं लिखा जा सकता, मनुष्येतर शक्ति पर लेखन की कल्पना ही कठिन है।

—रामकुमार भ्रमर

आधुनिक सन्दर्भों में महाभारत कथा

महाभारत पर आधारित उपन्यास माला

१२ खण्डों में सम्पूर्ण कृति

प्रख्यात लेखक

रामकुमार भ्रमर

का महत्वपूर्ण लेखन

आरम्भ (१) भीष्म कथा

अंकुर (२) गांधारी कथा

आवाहन (३) कुन्ती कथा

अधिकार (४) कर्ण कथा

अग्रज (५) युधिष्ठिर कथा

आहुति (६) द्रौपदी कथा

असाध्य (७) दुर्योधन कथा

असीम (८) भीम कथा

अनुगत (९) अर्जुन कथा

१८ दिन (१०) कुरुक्षेत्र युद्ध कथा

अन्त (११) पांडव राज्य, दुर्दशा, पर्वतों में पलायन

अनन्त (१२) कृष्ण कथा

मूल्य : सजिल्द संस्करण : ३५०० प्रत्येक

पेपर बैक संस्करण : १००० प्रत्येक

रामकुमार भ्रमर

कृत

श्रीकृष्ण-कथा पर आधारित

उपन्यास-माला

- कालचक्र - १
- कारागार - २
- कालिन्दी के किनारे - ३
- धर्मचक्र - ४
- कालयवन - ५
- जनाधार - ६
- जनपथ पर - ७
- जनपदान - ८
- जन-जन हिताय - ९
- जय - १०

महाभारत पर आधारित

उपन्यास-माला

- आरंभ - १
- अंकुर - २
- आवाहन - ३
- अधिकार - ४
- अवज - ५
- आहुति - ६
- अमध्य - ७
- अर्पण - ८
- अनुगत - ९
- १८ दिन - १०
- अन्त - ११
- अनन्त - १२